इकाई 2 उपबोधन को समझना

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 उपबोधन का अर्थ

- 2.3.1 उपबोधन की परिभाषाएँ
- 2.3.2 उपबोधन और संबद्ध क्षेत्र

2.4 उपबोधन के सिद्धांत

2.5 उपबोधन के लक्ष्य

2.6 उपबोधन के प्रमुख उपागम

- 2.6.1 निदेशात्मक उपागम
- 2.6.2 अनिदेशात्मक उपागम
- 2.6.3 संकलनात्मक उपागम

2.7 उपबोधन प्रक्रिया

- 2.7.1 *अवधारणाएं*
- 2.7.2 सोपान

2.8 प्रभावी उपबोधक की विशेषताएँ

2.9 समूह उपबोधन

- 2.9.1 समूह उपबोधन का अर्थ
- 2.9.2 समूह उपबोधन की अवधारणाएँ
- 2.9.3 समूहों का संरचनीकरण
- 2.9.4 समूह उपबोधन की प्रक्रिया
- 2.9.5 समूह उपबोधन के लाभ और सीमाएँ

2.10 उपबोधन से जुड़े विशिष्ट क्षेत्र

- 2.10.1 पारिवारिक उपबोधन
- 2.10.2 वृत्तिक उपबोधन
- 2.10.3 मादक द्रव्य व्यसनिकों व मद्य व्यसनिकों का उपबोधन

2.11 उपबोधन का मूल्यांकन

2.12 सारांश

2.13 अभ्यास कार्य

2.1 प्रस्तावना

आप इस खंड की पहली इकाई, **निर्देशन को समझना** का अध्ययन कर चुके हैं और उपबोधन की अवधारणा को बेहतर तरीके से समझने में यह आपके लिए सहायक भी सिद्ध होगी। वास्तव में, उपबोधन, विद्यालय के समग्र निर्देशन कार्यक्रम के प्रमुख और सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग के रूप में *माना* जाता है। *विद्यालय निर्देशन कार्यक्रम* के सभी *अन्य कार्यकलाप* और सेवाएँ उपबोधन प्रक्रिया से होकर गुजरते हैं और इसे पूरा करने में सहायक भी होते हैं। उपबोधन ही केवल ऐसा साधन है जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति विशेष की सहायता की जाती है। इसलिए,

उपबोधन की अवधारणा को भलीभांति समझना अत्यंत आवश्यक है। वृत्तिक आशय में प्रयुक्त उपबोधन का अर्थ, इसके सामान्य जीवन में प्रचलित अर्थ से काफी भिन्न है। सामान्य व्यक्ति के लिए, इसका अर्थ है, सलाह, सुझाव, अनुमोदन या कुछ विशेष जानकारी प्रदान करना। लेकिन वृत्तिक रूप में यह ऐसी वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिससे कोई भी व्यक्ति स्वयं को समझ पाता है और अपने आसपास के पर्यावरण को समझ कर आत्मनिर्भर, आत्म-निर्देशित और आत्म-संतुष्टि की ओर अग्रसर होते हुए जीवन का अर्थ समझता है और अच्छा जीवन जीने के योग्य बनता है। उपबोध्य की पहले से विद्यमान समस्याओं को सुलझाने के उद्देश्य से उपबोधन दिया जाता है ताकि भविष्य में ऐसी समस्याएँ दुबारा न उभरें और इसके साथ-साथ उपबोध्य का व्यक्तिगत, सामाजिक, संवेगात्मक, शैक्षिक और व्यावसायिक विकास हो सके। अतः हम कह सकते हैं कि उपबोधन उपचारात्मक, रोधात्मक और विकासात्मक पहलुओं से जुड़ा हुआ है।

इस इकाई में आपको उपबोधन की अवधारणा और इसके स्पष्ट अर्थ से अवगत कराया जाएगा और बाद में हम उपबोधन के सिद्धांतों, लक्ष्यों, सैद्धांतिक पक्षों, तकनीकों और उपबोधन की प्रक्रिया पर विस्तृत चर्चा भी करेंगे। इसके पश्चात् हम प्रभावी उपबोधक के गुण और विशेषताओं की जाँच करेंगे। चूँकि इस समय एक अलग पहचान के रूप में समूह उपबोधन का काफी बोलबाला है इसलिए इस विषय पर भी चर्चा की जाएगी। इस के अतिरिक्त उपबोधन से संबद्ध विशेष क्षेत्रों और उपबोधन सेवाओं के मूल्यांकन के महत्व पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

ध्यान दें कि इस इकाई का उद्देश्य मात्र जागरूकता (अभिज्ञा) उत्पन्न करना नहीं है, बल्कि इसके व्यावहारिक अनुप्रयोग को भी उजागर करना है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि :

- उपबोधन शब्द और विभिन्न क्षेत्रों में इसके महत्व की व्याख्या कर सकेंगे;
- उपबोधन के लक्ष्यों को व्यक्त कर सकेंगे;
- उपबोधन के सिद्धांतों का वर्णन कर सकेंगे;
- उपबोधन के विभिन्न उपागमों की तुलना कर सकेंगे;
- उपबोधन के विभिन्न क्षेत्रों में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे;
- प्रभावी उपबोधक की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे;
- ऐसे मामलों की पहचान कर सकेंगे जिन्हें उपबोधन के माध्यम से सहायता की आवश्यकता है; और
- ऐसे मामलों के निपटान में उपयुक्त उपागम और तकनीक का चयन कर सकेंगे।

2.3 उपबोधन का अर्थ

2.3.1 उपबोधन की परिभाषाएँ

हम पहले ही बता चुके हैं कि उपबोधन, निर्देशन कार्यक्रम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है। इसके अतिरिक्त हमने यह भी देखा कि वृत्तिक दृष्टिकोण से उपबोधन का अर्थ, इसके प्रचलित अर्थ से काफी भिन्न है। आइए अब उपबोधन के अर्थ का अधिक बारीकी से अध्ययन करें। इसके लिए हमें उपबोधन की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करना होगा। अवधारणा को समझने में यह सहायक भी होगा।

रोजर्स 1952, के अनुसार, उपबोधन "एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें चिकित्सक से संबंध स्थापित करते हुए उपबोध्य को सुरक्षा प्रदान की जाती है और उसके पूर्व अपेक्षित अनुभवों पर विचार करते हुए, समन्वित नीतियों से उसे नई दिशा प्रदान की जाती है।"

हैल्म (Helm) और मेक्यिन (Mchean) (1955) के अनुसार "उपबोधन एकैकी संबंध है जो अपनी समस्याओं से अकेले निपटने में असमर्थ पीड़ित व्यक्ति और ऐसे वृत्तिक कार्यकर्त्ता के बीच स्थापित होता है जो प्रशिक्षण और अनुभवों के आधार पर दूसरों की विभिन्न व्यक्तिगत समस्याओं को दूर करने में सक्षम है।"

स्मिथ (1955) के अनुसार, "उपबोधन ऐसी प्रक्रिया है जिसमें उपबोधक किसी उपबोध्य की इस प्रकार सहायता करता है कि उपबोध्य अपनी चयन योजना अथवा समंजन, जो वह करना चाहता है, से संबंधित तथ्यों की व्याख्या कर सके।"

पेपिस्की (Pepisky) और पेपिस्की (Pepisky) (1954) के अनुसार, "उपबोधन ऐसी अंतःक्रिया है जो उपबोधक और उपबोध्य के बीच संवृत्तिक वातावरण के अंतर्गत घटित होती है और उपबोध्य के व्यवहार में परिवर्तनों को सुगम बनाने की दृष्टि से आरंभ तथा अनुरक्षित की जाती है।"

स्टेफायर (1970) के अनुसार, "उपबोधन अधिगम-अध्यापन प्रक्रिया है।"

गस्टड (Gustad) (1953) के अनुसार, "उपबोधन अधिगमपरक प्रक्रिया है जो एक सरल एकैकी सामाजिक वातावरण में पूर्ण की जाती है जिसमें इसके अंतर्गत मनोवैज्ञानिक कौशलों और ज्ञान के क्षेत्र में व्यावसायिक दृष्टि से सक्षम उपबोधक, उपबोध्य की उन विधियों द्वारा सहायता करता है जो उपबोध्य की आवश्यकताओं के अनुरूप हों तथा समग्र कार्मिक कार्यक्रम के अंतर्गत हों। इसका उद्देश्य यह जानना है कि ऐसे बोध को स्पष्ट रूप से अनुभूत तथा वास्तविक रूप से परिभाषित लक्ष्यों के संबंध में कैसे व्यवस्थित किया जाए ताकि उपबोध्य अधिक प्रसन्न तथा समाज का अधिक उत्पादी सदस्य बन सके।"

उपयुक्त विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि "उपबोधन एक प्रकार का संबंध होता है। इसमें व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित और सक्षम उपबोधक और उपबोध्य के आपसी संबंधों का समावेश होता है। स्नेह, विश्वास, आपसी समझ और स्वीकरण इसकी विशेषताएँ होती हैं।"

2.3.2 उपबोधन और संबद्ध क्षेत्र

उपबोधन को बेहतर तरीके से समझने में, अन्य क्षेत्रों से जुड़े इसके संबंधों का अध्ययन आवश्यक है।

उपबोधन और साइकोथिरेपी (मनश्चिकित्सा)

मनोवैज्ञानिक तकनीकों से संवेगात्मक प्रकृति की समस्याओं का उपचार, साइकोथिरेपी या मनश्चिकित्सा कहलाता है। उपबोधन और साइकोथिरेपी के क्षेत्रों में अनेक समानताएँ और विभिन्नताएँ हैं। तथापि रोजर्स महोदय इन दोनों को बिल्कुल एक ही मानते हैं। लेकिन यह पूर्णतया सत्य नहीं है। व्यक्तिगत समस्याओं, उपबोधकों की प्रकृति और अपेक्षित समस्याओं की जटिलता के आधार पर दोनों में अंतर स्पष्ट किया जा सकता है। मनश्चिकित्सा में सामान्यतौर पर सहायता प्राप्तकर्ता किसी मानसिक रोग से पीड़ित व्यक्ति हो सकता है, लेकिन उपबोधन के अंतर्गत उपबोध्य ऐसा सामान्य व्यक्ति है जो विकासात्मक समंजन संबंधी समस्याओं से घिरा हुआ है। इसके अतिरिक्त मनश्चिकित्सा देने वाला व्यक्ति मनश्चिकित्सक कहलाता है और इसके पास चिकित्सा विज्ञान की बुनियादी योग्यता भी होती है लेकिन उपबोधक चिकित्सा पृष्ठभूमि से संबद्ध नहीं होता, तथापि मनोविज्ञान क्षेत्र में यह बड़े स्तर पर प्रशिक्षित होता है। मनश्चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य किसी विशेष रोग का उपचार करना है जबकि उपबोधन के अंतर्गत स्वयं को समझने में सहायता दी जाती है। स्पष्ट शब्दों में उपबोधन एक अधिगम प्रक्रिया है।

उपर्युक्त उल्लिखित भिन्नताओं के बावजूद, इन दोनों क्षेत्रों को अलग करना काफी कठिन कार्य है। इन दोनों क्षेत्रों में भिन्नताओं की तुलना में अतिव्याप्ति अधिक है। इन दोनों में उपबोध्य/सेवार्थी और चिकित्सक/ उपबोधक के बीच के संबंधों को अधिक महत्व दिया जाता है। जटिल प्रकृति की संवेगात्मक समस्याओं से निपटने में, उपबोधक घनिष्ठ रूप से मनश्चिकित्सा का अनुप्रयोग करता है।

निर्देशन और उपबोधन

निर्देशन और उपबोधन दोनों अंतरपरिवर्त्य रूप में प्रयुक्त होते हैं। सामान्यतौर पर और यदा-कदा उपबोधक भी इनका प्रयोग इस प्रकार करते हैं जैसे कि ये समानार्थक हैं। लेकिन यह सही नहीं है। दोनों एक दूसरे से जुड़े हैं लेकिन इन्हें समरूपी नहीं कहा जा सकता। निर्देशन अपेक्षाकृत अधिक व्यापक प्रक्रिया है जिसमें उपबोधन भी शामिल है। निर्देशन सेवाओं के अंतर्गत उपबोधन के अतिरिक्त अन्य बहुत-सी सेवाएँ शामिल हैं। हम कह सकते हैं कि समूचे निर्देशन कार्यक्रम में उपबोधन सर्वाधिक विशिष्ट और महत्वपूर्ण सेवा है।

अनुदेश और उपबोधन

उपबोधन से संबद्ध अन्य महत्वपूर्ण शब्द है, अनुदेश। अनुदेश और उपबोधन के बीच कुछ मूलभूत अंतर हैं। सामान्यतौर पर अनुदेश प्राप्तकर्ता, अनुदेशों का अनिवार्य रूप से अनुसरण करता है जबकि उपबोधन के अंतर्गत उपबोध्य उपबोधक की बातों को मानने के लिए बाध्य नहीं होता। वास्तव में उपबोधन के अंतर्गत किसी चीज को करने की बात नहीं कही जाती। इसी प्रकार से यद्यपि अनुदेश देने का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का विकास करना है और तात्कालिक उद्देश्य विषय, कौशल आदि की शिक्षा देना है लेकिन उपबोधन के मामले में यह सिद्धांत लागू नहीं होता। जहाँ एक ओर अनुदेशात्मक कार्यक्रम समयबद्ध और सुव्यवस्थित अनुदेशात्मक कार्यक्रम होता है, वहीं, दूसरी ओर उपबोधन न तो समयबद्ध है और न ही व्यवस्थित।

सलाह और उपबोधन

कभी-कभी उपबोधन से अभिप्राय सलाह देना समझा जाता है। इस भ्रांति को दूर करना आवश्यक है। क्या किया जाए यह जानने के लिए सलाह ली जाती है तथा सलाह इस अपेक्षा के साथ दी जाती है कि जो बताया गया है वह किया जाएगा। सलाह लेने वाला व्यक्ति किए जाने वाले कार्य और उसके परिणामों के लिए वास्तव में उत्तरदायी नहीं होता और अपने कृत्य से संबद्ध सभी कारकों को समझना भी उसके लिए आवश्यक नहीं होता। जबकि उपबोधन में सभी संबद्ध कारकों को भली-भांति समझना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। सलाह देने में, सलाहकार संबद्ध व्यक्ति के लिए आवश्यक निर्णय लेता है जबकि उपबोधन के अंतर्गत निर्णयन मुख्य रूप से उपबोधन प्राप्तकर्ता का ही संपूर्ण दायित्व होता है। इसलिए उपबोधक भी अपने सुझाए गए उपायों के लिए पूर्णतया उत्तरदायी होता है। छोटी सी मुलाकात या किसी विशेष स्थिति के अंतर्गत सलाह दी जा सकती है लेकिन, जैसा कि उपबोधन के संदर्भ में देखा गया है, यह एक निश्चित प्रक्रिया है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

1. निम्नलिखित कथन सही है अथवा गलत, उपयुक्त शब्द पर (√) का चिह्न लगाकर बताइए।

   i) उपबोधन एक सतत् प्रक्रिया है।

   ii) उपबोधन का उद्देश्य रोगी की मानसिक दशा में सुधार लाना है।

iii) उपबोधन के अंतर्गत उपबोधक और उपबोध्य में आकस्मिक संबंध स्थापित होता है।

iv) उपबोधक बनने के लिए, मूलभूत चिकित्सा पृष्ठभूमि का होना आवश्यक हैं।

v) निर्देशन और उपबोधन दोनों समानार्थक शब्द हैं।

vi) उपबोधन के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य उपबोध्य के लिए निर्णय करना है।

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) उपबोधक और सेवार्थी/ उपबोध्य के बीच का संबंध .... और .... से दर्शाया जाता है।

ii) .... के अनुसार, उपबोधन और मनश्चिकित्सा समानार्थक हैं

3. i) मनश्चिकित्सा और उपबोधन के बीच की दो समानताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

ii) उपबोधन और अनुदेश के बीच का मुख्य अंतर कौन-सा है?

....

....

....

....

....

iii) उपबोधन को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

....

iv) सलाह देना किस प्रकार उपबोधन देने से भिन्न हैं?

....

....

....

....

....

2.4 उपबोधन के सिद्धांत

उपबोधन विभिन्न सिद्धांतों पर आधारित है। ये सिद्धांत हैं:

1. उपबोधन एक प्रक्रिया है और उपबोधक को इस प्रक्रिया की जानकारी भली-भांति होनी चाहिए। इसके ज्ञान के अभाव में निराशा ही हाथ लगती है।
2. उपबोधन कोई भी प्राप्त कर सकता है, विशेषतौर पर स्कूलों में सभी या किन्हीं विशेष समस्याओं से संबद्ध विद्यार्थी या कोई भी विशेष विद्यार्थी इसका लाभ उठा सकता है। जैसाकि हमने पहले बताया था, स्कूली जीवन में उपबोधन की प्रकृति उपचारी नहीं है बल्कि अधिक विकासात्मक और उपचारी है।
3. उपबोधन कुछ मूलभूत मान्यताओं पर आधारित है।
   क) इस जगत का हर मनुष्य अपना उत्तरदायित्व स्वयं निभाने में सक्षम हैं।
   ख) हर मनुष्य को लोकतंत्र के सिद्धांतों के आधार पर अपना रास्ता चुनने का अधिकार है।
4. उपबोधक आत्म-वरण के अधिकार से उपबोध्य को वंचित नहीं करता बल्कि उसकी रूचि से जुड़े कार्यों को सुसाध्य बनाता है। उपबोधक को चाहिए कि वह उपबोध्य को उसी रूप में स्वीकार करें जैसा वह है, और उसका आदर करें।
5. उपबोधन से आशय सलाह देना नहीं है।
6. उपबोधन का अर्थ उपबोध्य के लिए चिंतन करना नहीं है बल्कि उसे योग्य बनाना है कि वह उचित चिंतन कर सकें
7. उपबोधन समस्या का समाधान करना नहीं है। उपबोधक का कार्य उपबोध्य की समस्या के समाधान में सहायता करना है।
8. उपबोधन से आशय साक्षात्कार करना नहीं है बल्कि सेवार्थी के साथ ऐसे बातचीत करना है जिससे वे अपने-आप को समझ सकें।
9. उपबोधक को व्यक्तिगत विभिन्नताओं का निर्धारण करना चाहिए और इन्हें ध्यान में रखना चाहिए।
10. उपबोधक को चाहिए कि वह सेवार्थी की अभिवृत्ति आदि में ऐसे परिवर्तन लाए कि आत्म-आलोचना के साथ-साथ वह, किसी भी आलोचना का सामना कर सके।
11. उपबोधक मात्र एक संसाधक या उत्प्रेरक का कार्य करता है। वह ऐसे वातावरण का निर्माण करता है जो उन्मुक्त और सुरक्षित हो। वह अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार से उपबोध्य के साथ ऐसा संबंध स्थापित करता है जिससे वह अपने दोषों को समझते हुए, बेहतर तरीके से आत्म-सुधार करता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

1. निम्नलिखित कथनों में से जो ठीक हैं उन पर सही (√) का चिह्न लगाकर बताइए।

   i) उपबोधक को उपबोध्य पर अपनी सोच विकसित करने का प्रयास करना चाहिए।

ii) विद्यालय में उपबोधन ऐसे विद्यार्थियों को दिया जाता है जो समस्याओं से घिरे हों।

iii) उपबोधन देने के दौरान उपबोधक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है।

iv) उपबोधन से आशय उपबोध्य के लिए सोच विकसित करना और निर्णयों का निर्धारण करना है।

5. उपबोधन की मूलभूत मान्यताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2.5 उपबोधन के लक्ष्य

कई विद्वानों का मानना है कि सभी बुराइयों को उपबोधन से दूर किया जा सकता है। लेकिन यह सत्य नहीं है। विभिन्न व्यक्तियों की इस संदर्भ में राय भी भिन्न-भिन्न है। अनेक बार उपबोधन के माध्यम से अवास्तविक कार्यों को पूरा किए जाने की आशा की जाती है। इसका मुख्य कारण उपबोधन का अर्थ भली-भांति न समझना है और इसी वजह से उपबोधन के वास्तविक लक्ष्यों की पहचान भी नहीं हो पाती। सामान्यतौर पर उपबोधक द्वारा उपबोधन के संदर्भ में स्वीकृत कुछ मुख्य लक्ष्य हैं;

1. **सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य की उपलब्धि**

   कोई भी व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थय तभी कहलाता है जब वह अन्य व्यक्तियों के साथ सार्थक सहसंबंध स्थापित करने और संतोषप्रद जीवन जीने के योग्य हो। मनुष्य ऐसा हो कि वह दूसरों को प्यार करे और दूसरे उसे प्यार कर सकें। उपबोधन का एक लक्ष्य यह है कि इससे व्यक्ति को इस अवस्था की प्राप्ति में सहायता मिलती है।

2. **समस्या-समाधान**

   उपबोधन का दूसरा लक्ष्य, व्यक्ति को समस्या या कठिन परिस्थिति से बाहर निकालना है। लेकिन ध्यान रखें कि इस कार्य में उपबोधक को केवल व्यक्ति की सहायता करनी है, क्योंकि अंत में समस्याओं का समाधान व्यक्ति को स्वयं ही करना होता है।

3. **निर्णयन के लिए उपबोधन**

   जीवन में सफल होने के लिए सही और समय पर निर्णय लेने की योग्यता अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। उपबोधन का मुख्य उद्देश्य स्वतंत्र निर्णय लेने में व्यक्ति को सक्षम बनाना है। उपबोधक व्यक्ति के सही लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए, आवश्यक जानकारी या उद्देश्य को स्पष्ट करके, उसकी सहायता कर सकता है लेकिन अंतिम निर्णय उपबोध्य को स्वयं लेने चाहिए।

4. **व्यक्तिगत प्रभाविता को सुधारना**

   प्रभावी व्यक्ति वही है जो आवेग को नियंत्रित कर सके, सृजनात्मक ढंग से सोच सके और समस्याओं को पहचानने, परिभाषित करने और हल करने में सक्षम हो। देखा गया है कि

ये सभी लक्ष्य एक-दूसरे से जुड़े हैं। इन सभी की अलग पहचान होते हुए भी, इनमें व्याप्ति है तथा वे अन्योन्याश्रित हैं।

5. **सहायता परिवर्तन**

विकास के लिए, परिवर्तन सदैव आवश्यक माना जाता है। व्यक्ति की मनोवृत्ति, विचारधारा या व्यक्तित्व परिवर्तन में उपबोधन सहायक होता है।

6. **व्यवहार परिवर्तन**

उपबोधन का अन्य उद्देश्य व्यवहार परिवर्तन में सहायता प्रदान करना है। प्रभावी और अच्छे समायोजन के लिए अवांछनीय व्यवहार या आत्मदोष व्यवहार को दूर करना होगा और वांछनीय व्यवहार की प्राप्ति अति आवश्यक है। इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रतिपादकों में व्यवहारमूलक उपबोधकों को शामिल किया गया है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

6. निम्नलिखित कथनों में से सही कथन पर (√) का चिह्न लगाइए।

   i) उपबोधन का मुख्य उद्देश्य व्यवहार परिवर्तन करना है।

   ii) सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ, शरीर में मानसिक रोग का न होना है।

7. उपबोधन के तीन लक्ष्यों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2.6 उपबोधन के प्रमुख उपागम

कोई भी व्यवसाय कुछ निश्चित धारणाओं और मान्यताओं पर आधारित होता है और सामान्यतौर पर इन्हें सिद्धांत कहा जाता है। उपबोधन भी कोई अपवाद नहीं है। यद्यपि उपबोधन के क्षेत्र में विभिन्न सिद्धांतों को प्रस्तावित किया गया है, फिर भी किसी एक सिद्धांत से उपबोधन के सभी पहलुओं पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता। इसलिए उपागम (शब्द) को सभी ने स्वीकारा है क्योंकि यह अपेक्षाकृत अधिक व्यापक शब्द है।

कोई उपागम उपबोधन प्रक्रिया के लिए एक संगत परिभाषा प्रदान करता है जिसमें उपबोधन लक्ष्यों का स्पष्ट कथन, तथा उपबोधन तकनीक विशेष के चयन का तर्काधार सम्मिलित होता है।

उपबोधन के तीन प्रमुख उपागम हैं : निदेशात्मक उपागम, अनिदेशात्मक उपागम, और संकलनात्मक उपागम।

2.6.1 निदेशात्मक उपागम

जैसा कि नाम में ही निहित है, यह उपागम उपबोधक की अधिक सक्रिय भूमिका को उजागर करता है। उपबोधक निदेशन की विभिन्न विधियों के प्रयोग द्वारा उपबोध्य को सहायता प्रदान करता है ताकि वह सही समाधान खोजने में सफल हो सकें। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक निदान में अपने विशिष्ट ज्ञान, अनुभव और आँकड़ों के व्याख्या के द्वारा उपबोधक अपने उपबोध्य को संबद्ध समस्याओं के शीघ्र उपचार में सहायता प्रदान करता है।

इस उपागम के प्रतिपादक, फ्रेडेरिक थॉर्न के अनुसार, "उपबोधक द्वारा दिए जाने वाले निर्देशन की आवश्यकता, विभिन्न व्यक्तिगत उपबोध्यों की स्व-नियमन (self-regulation) की क्षमताओं के विलोमानुपाती होती है।" यद्यपि जैसे-जैसे उपबोधन प्रक्रिया आगे बढ़ती रहती है, समस्या को सुलझाने का मुख्य उत्तरदायित्व उपबोधक का ही होता है, लेकिन उपबोध्य को भी समस्या का हल खोजने के प्रति अधिकाधिक प्रोत्साहित किया जाता है ताकि वह आत्म-निदेशन का अधिक दायित्व स्वयं ले सके।

यह उपागम उपबोध्य और उपबोधक के मध्य एक अधिक वैयक्तिक संबंध पर आधारित है। इसके लिए उपबोधक उपबोध्य के साथ मनोवैज्ञानिक तादात्मय स्थापित करने का प्रयत्न करता है ताकि वह उपबोध्य को गहन रूप से समझ सके।

उपबोधन के चरण (सोपान)

निदेशात्मक उपबोधन के छह चरण हैं। ये हैं :

क) **विश्लेषण**

इसके अंतर्गत उपबोध्य को भली-भांति समझने के लिए उससे जुड़े विभिन्न स्रोतों के आँकड़े इकठ्ठे किए जाते हैं। इसमें मनोवैज्ञानिक परीक्षणों आदि का संचालन सम्मिलित होता है। तथापि इस प्रकार के परीक्षण और अन्य औपचारिकताएँ उन दोनों के संबंधों में बाधक नहीं बननी चाहिए। इनका महत्व उस सीमा तक ही हो जिस सीमा तक एक उपबोधक अपने उपबोध्य को भली-भांति समझ सकें।

ख) **संश्लेषण**

इसका अर्थ प्राप्त किए आँकड़ों के संक्षेपण और संगठन से है जिससे उपबोध्य के गुणों, दायित्वों, समायोजनों और कुसमायोजनों आदि का पता लगाया जा सके। इन आँकड़ों में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों को भी शामिल किया जाता है।

ग) **निदान**

इस चरण में ऐसे निष्कर्षों को सूत्रबद्ध किया जाता है जो विद्यार्थियों द्वारा दर्शाई जाने वाली समस्याओं और उनकी प्रकृति पर आधारित होते हैं। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों और प्रश्नावली आदि के परिणामों के आधार पर ऐसे निष्कर्ष प्राप्त किए जाते हैं।

घ) **प्राग्ज्ञान**

इसके अंतर्गत उपयुक्त निष्कर्षों के आधार पर विद्यार्थी की समस्या के भावी समाधानों को उजागर किया जाता है।

च) **उपबोधन**

समूची प्रक्रिया में उपबोधन सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण है जिसमें काफी समय लगता है। यह ऐसा पहलू है जहाँ उपबोधक की विषय विशेषज्ञता सर्वाधिक अपेक्षित होती है। यह अत्यंत व्यक्तिगत अध्यापन-अधिगम प्रक्रिया है। यह ऐसा प्रत्यक्ष शिक्षण हो सकता है जो विद्यार्थी की समस्याओं को उजागर करने में सुस्पष्ट व्याख्या देता है और विद्यार्थी की मनोवृत्ति, रूचि आदि की खोज करने में भी सहायता प्रदान करता है। कई बार उपबोधक अपने

उपबोध्य से मैत्रीपूर्ण रूप में बातचीत करता है। इस में प्रायोगिक सत्र भी शामिल हो सकते हैं जहाँ उपबोधक के स्नेहपूर्ण व्यवहार से उपबोध्य अपने अंतिम लक्ष्य को भली-भांति समझ पाता है। अतः अपनी सक्षमताओं और परिस्थितियों के आधार पर उपबोध्य एक निश्चित सीमा तक आत्म-संचालन के योग्य हो जाता है। इस प्रकार से प्राप्त सफलता उसके सफल व्यवहारों को प्रबलित करती है जिसके फलस्वरूप वह जीवन में एक समायोजित मार्ग स्थापित कर लेता है।

अतः उपबोधन में शामिल हैं -

(क) आत्म-मूल्यांकन में विद्यार्थी की सहायता करना अर्थात् विद्यार्थी के लक्ष्य, अभिरुचि क्षमताओं और उद्देश्यों को पहचानना,

(ख) विद्यार्थी की इस प्रकार सहायता करना जिससे विद्यार्थी अपनी अभिनिर्धारित क्षमताओं और योग्यताओं का सदुपयोग कर एक कार्य योजना बना सके।

(ग) अंत में अनुकूली जीवन शैली का निर्माण करना।

उपबोध्य के आत्म-मूल्यांकन में सहायता करने के लिए दो प्रकार के आँकड़े आवश्यक हैं - स्वप्रेक्षित आंकड़े और बाह्य मूल्यांकन से प्राप्त आंकड़े। लेकिन कुछ प्रकार की जानकारी का माध्यम उपबोध्य स्वयं ही होता है। इसके साथ-साथ विश्लेषण और नैदानिक सूत्रों से प्राप्त जानकारी को उपबोधक स्वयं प्रेषित करे। लेकिन इस कार्य में उसे सावधानी बरतनी चाहिए कि कहीं उपबोध्य को आभास न हो कि वे दोनों ही अज्ञानता की समान अवस्था में हैं। उपबोधक को विश्लेषण/ निदान आदि से संबद्ध चरणों की विस्तृत जानकारी उपबोध्य को नहीं देनी चाहिए। हाँ उसे समग्र प्रक्रिया का संक्षेपण अवश्य दिया जाना चाहिए। उपबोधक का व्यवहार हठधर्मी नहीं होना चाहिए, परंतु सैद्धांतिक ज्ञान, अनुभव और निर्णयन के आधार पर उपबोध्य की सहायता करनी चाहिए। यदि उपबोधक दर्शाता है कि वह निर्णय लेने में सक्षम नहीं है तो वह उपबोध्य का विश्वास, प्राप्त नहीं कर सकेगा। उसे लगातार चर्चा करते रहना चाहिए। इसके लिए उपबोधक को समय-समय पर उपबोध्य के मुख और चेहरे के हाव-भाव से संकेत लेने चाहिएं। इस प्रकार उपबोधक तथा उपबोध्य के मध्य सहयोग स्थापित होना चाहिए ताकि मामले की वैध व्याख्या की जा सके तथा अनुकूली व्यवहार परिवर्तन का प्रभावी कार्यक्रम बनाया जा सके।

2.6.2 अनिदेशात्मक उपागम

इस उपागम में उपबोधक ऐसा वातावरण प्रदान करता है जिसमें सेवार्थी बिना किसी भय या दबाव के पूर्णतया मुक्त अवस्था में अपने विचारों और अनुभूतियों की खोज करता है। उपबोध्य को उसकी क्षमताओं से अवगत करा कर उपबोधक उत्प्रेरक का कार्य करता है। इस उपागम में आँकड़ों का स्रोत उपबोध्य स्वयं होता है और व्यवहार में बदलाव लाने का अंतिम उत्तरदायित्व उपबोधक की बजाए सेवार्थी का होता है। उपबोधक को इतना निष्क्रिय भी नहीं होना चाहिए कि उपबोध्य/सेवार्थी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करना बंद कर दे और उपबोधक को इतना सक्रिय भी नहीं होना चाहिए कि सेवार्थी की बजाए उपबोधक स्वयं मुख्य केंद्र बन जाए।

केंद्रीय परिकल्पनाएँ

कार्ल रोजर्स जो सेवार्थी केंद्रित उपागम के प्रतिपादक हुए हैं, ने केंद्रीय परिकल्पना को इस प्रकार सूत्रबद्ध किया है :

क) व्यक्ति के भीतर कुछ ऐसी प्रच्छन्न क्षमता होती है जिससे अवगत होने पर वह अपने उप पक्षों को समझ सकता है जो उसके असंतोष, दुश्चिंता तथा कष्ट का कारण बनते हैं। इसके अतिरिक्त वह क्षमता भी होती है जिससे वह अपने-आपको पहचान सकता है तथा जीवन के साथ अपने संबंधों को स्वानुभूति और परिपक्वता की दिशा में ले जा सकता है तथा इसके फलस्वरूप उसे आंतरिक सुख का आभास होता है।

ख) इस क्षमता का आभास तब होगा, जब मनोचिकित्सक ऐसा मनोवैज्ञानिक पर्यावरण निर्मित करें जिसमें सेवार्थी को एक अप्रतिबंधित सार्थक मानव के रूप में स्वीकारा जा सके, जिसमें उसकी वर्तमान भावनाओं तथा संप्रेषणों को समझने का एक निरंतर संवेदनशील प्रयास संभव हो, तथा इस तदनुभूतिक बोध को उपबोध्य तक पहुँचाने का एक सतत प्रयास किया जाए।

ग) इसके आगे यह परिकल्पना की गई है कि इस प्रकार के सौहार्दपूर्ण और संकट रहित वातावरण में उपबोध्य अपनी पहचान करने में सफल होगा।

घ) इस प्रकार उपबोध्य के साथ चिकित्सापरक संबंधों से प्राप्त समायोजित जीवन मार्ग वास्तविक जीवन में भी समस्त रूप में सामान्यीकृत (लागू) हो जाएगा।

अतः इस सिद्धांत का मुख्याधार है कि उपबोधन उपबोधन स्थिति के साहोर्दपूर्ण वातावरण में सेवार्थी अपने स्व और अनुभूति के मध्य गलत धारणाओं तथा असंगतताओं को ठीक करने में सक्षम हो जाता है। उपबोधक में कुछ ऐसे व्यक्तिगत गुण होने चाहिए जैसे संगतता, अप्रतिबंधित सकारात्मक आदर (उपबोधक की ऐसी अभिवृत्ति जहाँ उपबोध्य के विचारों, भावनाओं या व्यवहार को बिना अच्छा या बुरा मूल्यांकित किए स्वीकार कर लिया जाता है) तथा तदनुभूति (उपबोधक की वह योग्यता जिसके द्वारा वह उपबोध्य के संसार को जान लेता है या वैसा ही अनुभव करता है जैसा उपबोध्य अनुभव करता है)।

तथापि वह सिद्धांत उपबोधक में कुछ विशेष गुणों के होने को कम महत्व देता है जैसे कि उसका व्यवहारकुशल होना और समस्या निवारण तकनीकों या विकासात्मक प्रक्रियाओं में निपुण होना। इसके अतिरिक्त रोजर्स निदान परीक्षण या ऐसे अन्य तकनीकों के प्रयोग से यह कहते हुए सहमत नहीं हैं कि इनके द्वारा सेवार्थी की स्वाभाविक वृद्धि में बाधा पड़ती है। इसके बजाए वह इस बात पर बल देता है कि उपबोधक को चाहिए कि वह उपबोध्य की बातों को ध्यान से सुनें, उनका अर्थ निकाले, उसकी टिप्पणियों पर विचार करे, न कि सीधे प्रश्न करे या व्याख्या करे।

2.6.3 संकलनात्मक उपागम

इस उपागम के अंतर्गत उपबोधक विभिन्न प्राप्य दृष्टिकोणों से प्राप्त संकल्पनाओं के आधार पर उपबोधन प्रदान करता है। वह विशिष्ट सैद्धांतिक अध्ययन का विशेष रूप से अनुसरण नहीं करता बल्कि किसी विशेष विचारधारा पर जोर न देते हुए ऐसी कार्यप्रणाली और तकनीकों का प्रयोग करता है, जो उसकी राय में किसी भी विशेष उपबोध्य के मामले में सर्वाधिक प्रभावी है।

थॉर्न के अनुसार, "संकलनवाद, उपबोधन के क्षेत्र में सर्वाधिक व्यवहार्य और उपयुक्त उपागम है क्योंकि जिस प्रकार किन्हीं दो व्यक्तियों को समतुल्य नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार से व्यक्तित्वं के किसी भी एकल सिद्धांत के माध्यम से व्यक्तियों के विभिन्न व्यवहारमूलक प्रतिरूपों की व्याख्या नहीं की जा सकती। इसी प्रकार से हर समस्या अपने-आप में अनोखी होती है और हर मामले में प्रयुक्त तकनीक या उपागम भी आवश्यक नहीं है कि किसी दूसरे मामले में भी समान रूप से प्रभावी हो। इसलिए अलग-अलग मामलों की प्रकृति के अनुसार उपागम का अनुप्रयोग किया जाता है और संकलनवाद इस विचारधारा को सहमति प्रदान करता है।"

संकलनवाद दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति करने में थार्न द्वारा समन्वित मनोचिकित्सा शब्द का प्रतिपादन किया गया था। थार्न की सैद्धांतिक आधारशिला निम्नलिखित पूर्वधारणाओं पर आधारित है;

i) सभी मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ, समाकलन के विकास के उदाहरण हैं और मनोवैज्ञानिक उपबोधन का लक्ष्य इस समाकलन प्रक्रिया को सुदृढ़ करना है ताकि आत्म-अभिव्यक्ति के उच्च स्तरों को विकसित किया जा सके। अतः वर्तमान वास्तविक स्थिति में व्यक्ति ही केन्द्र बिन्दु होता है।

ii) चिकित्सक के लिए पता लगाना आवश्यक है कि जीवन से जुड़े उत्तरदायित्वों को निभाने में क्या उपबोध्य के पास आवश्यक संसाधन हैं या नहीं।

iii) यदि चिकित्सक संतुष्ट हो जाता है तो वह उपबोध्य को कुछ रोज़ाना के कार्य शुरू करने का उत्तरदायित्व सौंप देता है।

iv) चिकित्सा के अधीन उपबोध्य को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है जिससे वह स्वयं को संचालित करने के आवश्यक कौशल सीख सके।

थॉर्न ने मनश्चिकित्सा की बजाए "मनोवैज्ञानिक तरीके से मामले को सुलझाना" पदांश का प्रयोग किया है और इस प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण शामिल हैं :

क) सेवार्थी की समस्याओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए क्रमबद्ध विश्लेषण/निदान।

ख) उपबोधन की विभिन्न विधियों को उनके गुण और दोष के आधार पर समझना।

ग) लक्षणों की तुलना में कारणों पर अधिक ध्यान देना

घ) उपबोध्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, विशिष्ट विधि का चयन।

च) प्राप्त परिणामों के आधार पर विधि का मूल्यांकन।

छ) वैज्ञानिक तरीके से आंकड़ों का विश्लेषण और परिणाम का मूल्यांकन करना।

आरनोल्ड लेजारस द्वारा प्रदिपादित 'बहुविधा चिकित्सा' संकलनात्मक उपागम का अन्य उदाहरण है। इनके अनुसार व्यक्तित्व प्रकार्यों के सात प्रमुख क्षेत्र हैं; (1) व्यवहार (प्रेक्षणीय कार्रवाई), (2) भावात्मक (संवेगात्मक), (3) संवेदन (भावनाएँ), (4) प्रतिबिंब (कल्पनाशक्ति), (5) संज्ञान (चिंतन प्रक्रिया), (6) अन्तर्वैयक्तिक संबंध (सामाजिक) और (7) औषध/ जैविक (भौतिक)। इन सभी विशेषताओं को शामिल करने में आरनोल्ड ने BASIC ID परिवर्णी शब्द (acronym) का प्रयोग किया।

इस उपागम का महत्वपूर्ण लक्षण है कि हर व्यक्ति अपने BASIC ID के संदर्भ में अद्वितीय है। इसकी यह धारणा है कि दुरनुकूलित व्यवहार गलत अधिगम का परिणाम है और उपबोधन का लक्ष्य सेवार्थी द्वारा वांछित परिवर्तन लाना है जो चिरस्थायी हों और जिन्हें प्रभावकारी और मानवोचित ढंग से पूरा किया जा सके।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) खंड के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

8. निम्नलिखित कथनों में जो सही हैं उन पर (√) का चिह्न लगाकर बताइए।

   i) मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग अनिदेशात्मक उपबोधन में किया जाता है।

   ii) उपबोधन में संकलनात्मक उपागम से आशय सफलता मिलने तक एक के बाद एक उपागम का प्रयोग करते रहना है।

   iii) निदान निदेशात्मक उपबोधन का चरण है।

   iv) अनिदेशात्मक उपबोधन में, उपबोधक की भूमिका मुख्य नहीं होती।

9. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   i) .... अनिदेशात्मक उपबोधन उपागम के प्रतिपादक हैं।

   ii) समाकलित मनोविज्ञान शब्द का प्रतिपादन .... ने उपबोधन के लिए अपने .... उपागम की व्याख्या के लिए किया था।

iii) फ्रैडेरिक थॉर्न का नाम .... से जुड़ा हुआ है।

10. i) निदेशात्मक उपबोधन में शामिल चरणों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

ii) बहुविधा चिकित्सा से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

2.7 उपबोधन प्रक्रिया

उपबोधन का आरंभ किसी उपबोध्य विशेष से उसके जीवनवृत्त से संबंधित प्रश्नावली को भरवा कर किया जाता है। इस प्रक्रिया में शामिल हैं, पुनर्बलन से जुड़ी कार्यप्रणाली, आग्रहिता प्रशिक्षण, विसंवेदनीकरण प्रतिपुष्टि और संज्ञानात्मक पुनर्रचना। भौतिक और काल्पनिक विधाओं में, आरनोल्ड ने गेस्टाल्ट और अन्य साकल्य तकनीकों का प्रयोग किया है। जैसे खाली कुर्सी में भूमिका प्रतिवर्ती संवाद बोलना, आमना-सामना, उदरीय श्वसन, सकारात्मक, प्रतिबिंबन चित्रण और फोकसन। अंतर्वैयक्तिक विधाओं में आत्म-प्रबंधन और सामाजिक कौशलों का प्रयोग किया गया है।

संवृत्तिक रूप में उपबोधन का संबंध सदैव दूसरों की सहायता करने से है, चाहे यह किसी भी संदर्भ में प्रयुक्त किया गया हो। लेकिन यहाँ इसका उपयुक्त अर्थ और भी सार्थक है। क्योंकि विशेष समस्या की बजाए समग्र व्यक्ति हमारे ध्यान का केन्द्र बिंदु है।

उपबोधन का सर्वश्रेष्ठ वर्णन एक प्रक्रिया के रूप में हो सकता है। इसका अर्थ है कि उपबोधन में कुछ निश्चित समय अवधि में अभिज्ञेय घटनाओं का अनुक्रम शामिल होता है। लिया गया समय, घटनाओं का अनुक्रम, अंतर्निहित गति के अन्वेषण की प्रकृति और विस्तार आदि अलग-अलग व्यक्तियों में भिन्न होते हैं। तथापि ऐसे कुछ बुनियादी चरण हैं जो इस प्रकार की उपबोधन प्रक्रियाओं का अनिवार्य भाग होते हैं। ऐसे चरणों के विस्तार में जाने से पहले, आइए इनसे जुड़ी कुछ अवधारणाओं की ओर ध्यान दें।

2.7.1 अवधारणाएँ

तत्परता

सेवार्थियों को मुख्य रूप से दो व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है। पहली श्रेणी में वे सेवार्थी शामिल होते हैं जो स्वैच्छिक रूप से सहायता चाहते हैं, और दूसरी श्रेणी में वे सेवार्थी आते हैं जो विशेष रूप से किसी व्यक्ति अथवा संस्था द्वारा भेजे जाते हैं। मामला चाहे जैसा भी हो, उपबोधन में यह पूर्वधारणा होती है कि सेवार्थी उपबोधन चाहता है, जिसके कारण वह सहायता के लिए आ रहा है। इस इच्छा को 'तत्परता' कहा जाता है।

प्रतिसंकल्प

लोग प्रायः सहायता माँगने और इसे स्वीकारने में कठिनाई अनुभव करते हैं क्योंकि कुछ अवस्थाओं में वे परिवर्तन के परिणामों का सामना करने में कुछ अनिच्छुक होते हैं और कुछ के लिए सहायता लेने का अर्थ असफलता को स्वीकार करना है। इसी तरह कुछ अनुभव करते हैं कि उन्हें सहायता की आवश्यकता नहीं है और इसी वजह से उनकी सहायता न की जाए। इस प्रकार की नकारात्मक भावना जो सहायता लेने से व्यक्ति को रोकती है 'प्रतिसंकल्प' कहलाती है।

व्यक्तिवृत्त

इस क्षेत्र में व्यक्तिवृत्त शब्द का प्रयोग अक्सर होता है। व्यक्तिवृत्त से आशय उपबोध्य के वर्तमान और पिछले जीवन से जुड़े तथ्यों का सुव्यवस्थित संग्रहण है। लेकिन उपबोधक के सैद्धांतिक अभिविन्यास के साथ अवधान का केन्द्र परिवर्तित होता रहता है जैसे मनोवैश्लेषिक रूप से अभिविन्यासित उपबोधक बचपन से जुड़े संगत अनुभवों को ध्यान में रखकर कार्य करता है।

सौहार्द

उपबोधन में सौहार्द को जितना महत्वपूर्ण समझें, कम रहेगा। यह उपबोधक द्वारा निर्मित ऐसा मैत्रीपूर्ण, सुखद व बोध पर आधारित और अनुकूल वातावरण है जो प्रभावी उपबोधन संबंधों के निर्माण में उत्प्रेरक है। सौहार्द स्थापित करने में मुख्य रूप से संबंधों का माधुर्य, उपबोधक के प्रति इस माधुर्य का संप्रेषण और विश्वास की अनुभूति जो एक निरूपाधिक स्वीकरण विकसित होता है, अत्यंत महत्वपूर्ण कारक हैं। उपबोध्य को बुलाने के लिए स्वयं उठ कर जाना, उससे स्नेहपूर्ण ढंग से मिलना, उसे आराम से बिठाना और आरंभ में समस्या से उसका ध्यान हटाना आदि ऐसी तकनीके हैं जिन्हें उपबोधन के आरंभिक चरण में इस्तेमाल किया जा सकता है।

अन्यारोपण

इसका संबंध उपबोध्य द्वारा उपबोधक के उन संवेगों के अन्यारोपण से है जो उसने अपने जीवन के आरंभिक काल में माता-पिता तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों के प्रति अनुभव किया था। उपबोधन स्थितियों में ऐसी अभिव्यक्ति काफी स्वाभाविक है क्योंकि उपबोध्य उपबोधक पर विश्वास करता है और अपनी भावनाओं और संवेदनाओं को खुलकर अभिव्यक्त करने के लिए उसे प्रेरित भी किया जाता है। उपबोधक को इन भावनाओं का आदर करना चाहिए और इन्हें चिकित्सीय रूप में संचालित करना चाहिए ताकि संबंध विच्छेद न होने पाएं।

प्रति-अन्यारोपण

यह स्थिति उस समय घटित होती है जब कि चिकित्सक अपने अनसुलझे द्वंद्वों को उपबोध्य को प्रक्षेपित कर देते हैं, उपबोधक, उपबोध्य के साथ असुविधा महसूस करने लगते हैं या क्रोध, रोष आदि की निर्मूल स्थिति का अनुभव करते हैं या वे खुद उपबोध्य पर निर्भर करना शुरू कर देते हैं या अपने उपबोध्य के साथ अतिभावुकतापूर्ण ढंग से अंतर्भावित हो जाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि प्रति-अन्यारोपण में ऐसी भावनाएँ स्थिर हो जाती हैं जो उपबोधक के लिए उचित नहीं है। यदि उपबोधक द्वारा दिए गए तर्कों से भी स्थिति नहीं सुधरती है तो उसे स्वयं संवृत्तिक सहायता लेनी चाहिए।

प्रतिरोध

इस अवस्था में उपबोध्य निश्चित उद्देश्यों की ओर उपबोधक द्वारा किए जाने वाले प्रयासों का प्रतिरोध करता है। हाल की प्रवृत्तियों से पता चलता है कि प्रतिरोध उपबोधन प्रक्रिया का अपेक्षित अंग है और उपबोधक के परिणामों पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रतिरोध का विस्तार शत्रुतापूर्ण व्यवहार से आरंभ करते हुए निष्क्रिय रूप से प्रतिरोध करने तक है जैसे चिकित्सक को मिलने के लिए जानबूझ कर देरी से पहुँचना आदि।

2.7.2 सोपान

उपबोधन प्रक्रिया कुछ विशेष अवस्थाओं से होकर गुजरती है और इन्हें मुख्यतः निम्नलिखित अवस्थाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. **प्रारंभिक सोपान : उपबोध्य द्वारा आत्म-अन्वेषण**

   प्रारंभिक चरण में उपबोध्यों को आत्म-अन्वेषण के लिए प्रेरित किया जाता है ताकि वे अपने-आपको भली-भांति समझने का प्रयास करें और अपने उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से समझ सकें। सामान्य उपबोधन लक्ष्य निश्चित किए जाते हैं और इसी के अनुरूप वातावरण भी तैयार किया जाता है। इसी प्रकार से उपबोध्य की प्रकृति और समस्या की जटिलता को ध्यानपूर्वक समझते हुए और एकत्रित जानकारी के आधार पर उपबोधक कुछ समस्या-निवारण प्रक्रियाओं को पहले से ही मस्तिष्क में रखता है। ऐसी प्रक्रियाओं में शामिल हैं, मनोवैज्ञानिक परीक्षण, प्रश्नावली के माध्यम से उपबोध्य को समझना और अन्य सूचियों की सहायता से उपबोध्य की जाँच।

   प्रारंभिक सोपान को दो उप-भागों में विभाजित किया जाता है - (क) पहली मुलाकात और (ख) प्रारंभिक उपबोधन सत्र।

   क) **पहली मुलाकात** : इसका मूल उद्देश्य उपबोधक और उपबोध्य के बीच मधुर कार्यकारी संबंध स्थापित करना है ताकि एक-दूसरे को समझते हुए समस्या का निवारण किया जा सके। यह अत्यंत चुनौतीपूर्ण अवस्था मानी जाती है क्योंकि जब सेवार्थी इस अवस्था में उपबोधक के पास पहुँचता है तो उस समय वह अनिश्चित और दुविधाभरी भावनाओं से ओत-प्रोत होता है। इसलिए उपबोधक बातचीत द्वारा, मुख अभिव्यंजना और अपने समग्र व्यवहार के माध्यम से अपने सेवार्थी को दर्शाता है कि वह उसे भली- भाँति समझ रहा है और उसकी समस्या का निवारण वह पूरी लगन से करेगा। लेकिन ऐसें संबंध स्थापित करने में उसे कुछ निश्चित शिष्टाचार को ध्यान में रखना पड़ता है जैसे उपबोध्य को आरामदायक स्थिति में खुद उठ कर बिठाना, बातचीत के दौरान फोन की घंटी पर ध्यान न देना आदि। ऐसी पहली मुलाकात के दौरान उपबोधक को यह सोचने की आवश्यकता होती है कि क्या वह उपबोध्य की समस्या को हल करने में सक्षम है। यदि नहीं, तो सेवार्थी को किसी उचित व्यावसायिक एजेंसी में भेजना आवश्यक हो जाता है। सेवार्थी को भी इस तथ्य के प्रति जागरूक कराना चाहिए कि उपबोधन के उपरांत वह क्या प्राप्त करेगा और वह खुद क्या आशा कराता है। इसी प्रकार से गोपनीयता, निजता-अधिकार, अन्य नैतिक और कानूनी बातों को भी भली-भाँति स्पष्ट कर लेना चाहिए। इस अवस्था के दौरान सत्रों की लंबाई, शुल्क का भुगतान, आपसी समझ के आधार पर मिलने का समय तय करना आदि बातों को भी पहले से ही स्ष्ट कर लेना चाहिए।

   ख) **प्रारंभिक उपबोधन सत्र** : इसके दौरान उपबोधक अधिकांश समय में बिना कोई अनावश्यक प्रश्न पूछते हुए सेवार्थी की बातों को ध्यान से सुनता है और उसे अपने विचारों को खुल कर कहने के लिए प्रेरित करता है। अतः सेवार्थी को ध्यानपूर्वक सुनकर, सेवार्थी की बात पर ध्यान देकर, उसके शारीरिक व्यवहारों और अन्य प्रतिक्रियाओं पर ध्यान देते हुए उपबोधक पूरी जानकारी प्राप्त करता है। यदि सेवार्थी विचारों को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं है तो साधारण प्रश्नों के माध्यम से जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

2. **मध्यम सोपान : गूढ़ अन्वेषण और विश्लेषण**

   इस चरण में उपबोधक अपने सेवार्थी की बाहरी समस्याओं से हटकर भीतरी समस्याओं की ओर ध्यान केंद्रित करता है अर्थात् प्राथमिक संज्ञात्मक स्तर से संवेगात्मक स्तर की ओर बढ़ना। इस स्तर पर उपबोध्य क्रमशः अपनी भावनाओं को उजागर करता है। वह अपने सेवार्थी को अधिक गहराई से समझने का प्रयास करता है, कभी-कभी प्रतिवाद का रुख

भी अपनाता है, उसकी टिप्पणियों की कठोर व्याख्या करता है आदि। इस बिंदु पर कुछ उपबोधक अपने उपबोध्यों के बौद्धिक या व्यक्तित्व प्रकार्यों को समझने में कुछ विशेष परीक्षणों का प्रयोग करते हैं। अतः जैसे-जैसे उपबोध्य अपनी समस्याओं को खुलकर अभिव्यक्त करता है, उसमें जागरूकता उत्पन्न होती है, उपबोधक और उपबोध्यों के बीच अन्यारोपण, प्रति-अन्यारोपण, प्रतिरोध आदि जैसी संवेगात्मक अंतःक्रिया विकसित होनी शुरू हो जाती हैं। यद्यपि मनोविश्लेषक विशेषज्ञ इस बात से सहमत हैं कि सभी उपबोधन संबंधों में यह एक सार्विक परिघटना है।

3. अंतिम सोपान : कार्य योजना के माध्यम से लक्ष्यों का कार्यान्वयन

इस चरण तक पहुँच कर, उपबोध्य यथार्थता स्तर पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना आरंभ कर देते हैं। वे पहले की अपेक्षा अपने प्रति अधिक जागरूक और आग्रहितापूर्ण हो जाते हैं और रोज़ाना के जीवन में इस समझ का प्रयोग भी आरंभ कर देते हैं। यह ऐसा चरण है जहाँ नई समझ को रचनात्मक रूप दिया जाता है। जोर दिया जाता है कि प्रारंभिक लक्ष्यों में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यवहार, मनोवृत्ति और कौशलों में बदलाव लाया जा सके। जो उपबोध्य निर्णय लेने में देरी करते हैं, उनका उपचार भूमिका अभिनय द्वारा या पूर्वाभ्यास, आग्रहिता प्रशिक्षण आदि जैसी विशेष कार्यनीतियों द्वारा उनका उपचार किया जाता है।

4. समाप्ति

यदि पहले से निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हो जाती है तो उपबोधन समाप्ति की घड़ी आ जाती है। यदि उपबोधक समझता है कि समस्या का समाधान हो गया है तो वह प्रत्यक्ष रूप से मुद्दे पर प्रकाश डाल सकता है या यदि सेवार्थी सुनिश्चित हो गया है कि समस्या दूर हो चुकी है तो वह उपबोधन समाप्ति की घोषणा कर सकता है। लेकिन इस कार्य में उपबोधक को पूर्ण रूप से सचेत रहना चाहिए कि प्रगति रोध के अभाव में तो उपबोध्य कहीं समाप्ति की घोषणा तो नहीं कर रहा। उसे इस ओर भी सचेत रहना चाहिए कि उपबोध्य द्वारा समाप्ति की घोषणा कहीं प्रतिरोध का प्रतीक तो नहीं है। यदि ऐसा हो तो स्थिति को ध्यानपूर्वक संभालना चाहिए।

यदि समाप्ति यथोचित है तो उपबोधक को अंतिम कुछ सत्रों में उपबोध्य को अपनी निर्भरता से मुक्त करने का भरसक प्रयास करना चाहिए। ऐसी स्थिति में उपबोध्य में प्रायः लक्षण पुनः आ सकते हैं तथा घबराहट, उत्सुकता, चिंता आदि का अनुभव हो सकता है। जब उपबोधक सफलतापूर्वक अपना कार्य पूरा करता है तो वह उपबोधन के मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति भली-भाँति कर लेता है और जीवन के अगले अध्याय से जुड़े नए अधिगम पर ध्यान केंद्रित करता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) खंड के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

11. निम्नलिखित कथनों में जो सही हैं उन पर (√) का चिह्न लगाइए।

i) उपबोधन एक प्रक्रिया है क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के उपयोग से संबद्ध है।

ii) उपबोधन के दौरान उपबोध्य के साथ भावुक हो जाना या उस पर निर्भर करना, उपबोधक के लिए उचित है।

iii) पहली मुलाकात का मुख्य उद्देश्य सौहार्द स्थापित करना है।

12. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) नकारात्मक सोच जो व्यक्ति को उपबोधक से सहायता प्राप्त करने से रोकता है, ... कहलाता है।

13. i) उपबोधन के संदर्भ में प्रतिरोध से क्या आशय है?

....

....

....

....

ii) प्रति-अन्यारोपण से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

2.8 प्रभावी उपबोधक की विशेषताएँ

प्रभावी उपबोधक की विशेषताओं की पहचान करने के बहुत सारे प्रयास हुए हैं।

1. **सामान्य विशेषताएँ**

अमेरिका के नेशनल वोकेशनल गाइडैन्स एसोसिएशन (NVGA) ने ऐसी कुछ विशेषताओं को सूचीबद्ध किया है, जैसे आम व्यक्तियों की समस्याओं में रूचि रखना, सहनशक्ति और संवेदनशीलता का होना, संवेगात्मक स्थिरता और वस्तुनिष्ठता का होना। हरमिन और पालसेन (1950) द्वारा बताई गई विशेषताएँ हैं : उपबोध्य को समझना, उससे सहानुभूति भरा और दोस्ताना व्यवहार करना, विनोदशील होना, स्थिरता, सहनशक्ति, विस्तुनिष्ठता, सत्यनिष्ठा, चतुराई, निष्पक्षता, सफाई, शांतचित्त रहना, खुले विचारों का होना, दयालु, खुशमिज़ाज, सामाजिक चातुर्य और मनःसंतुलन। हावरर (1951) के अनुसार वैयक्तिक परिपक्वता प्रभावी उपबोधक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण वांछनीय विशेषता है। "उपबोधक शिक्षा और पर्यवेक्षण संघ" के अनुसार प्रभावी उपबोधक के छह मूल गुण बताए गए हैं ; **प्रत्येक व्यक्ति में विश्वास रखना, व्यक्तिगत मानव मूल्यों के प्रति वचनबद्धता, विश्व की ओर जागरूकता, उदार मनस्कता, स्वयं को समझना और वृत्तिक वचनबद्धता।**

आयु, लिंग, अनुभव जैसे अवयव भी कुछ सीमा तक उपबोधन प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। देखा गया है कि युवा उपबोधकों की योग्यता में उपबोध्य अधिक आश्वस्त होते हैं। आयु के साथ अनुभव बढ़ता जाता है, और उपबोधक भी अनुभव के आधार पर श्रेष्ठ बनता जाता है। सामान्यतः महिला उपबोध्य संवेगात्मक समस्याओं पर केवल महिला उपबोधकों के साथ ही चर्चा करना पसंद करती हैं। उपबोधक की लैंगिक स्थिति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह भी महत्वपूर्ण है कि उपबोधक महिला है अथवा पुरुष। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उपबोध्य अपनी समस्याओं को किस प्रकार के उपबोधक (महिला अथवा पुरूष उपबोधक) के साथ अपनी समस्याओं पर चर्चा करने में आसानी अथवा कठिनाई अनुभव करता है।

2. **व्यक्तित्व संबंधी विशेषताएँ**

प्रभावी उपबोधन को ध्यान में रखते हुए ऐसी कुछ व्यक्तित्व संबंधी विशेषताओं की पहचान विभिन्न शोध अध्ययनों के माध्यम से की गई है।

वाइट्स (1957), सिंड्रे एवं सिंडरे (1961) और स्टाइलर (1961) ने निम्नलिखित विशेषताओं का सुझाव दिया है :

क) **व्यक्तियों की सहायता करने में रुचि रखना**

यदि उपबोधक स्वाभाविक रूप से अन्य व्यक्तियों की सहायता करने में रूचि रखता है तो उपबोध्य उसकी उपस्थिति में सुविधा महसूस करेंगें और इससे प्रभाविता भी बढ़ेगी।

ख) **प्रातक्षिक संवेदनशीलता**

उपबोधक को उपबोध्यों के विचार और भावनाओं का उनके द्वारा दी गई जानकारी और अपनी समझ के आधार पर प्रत्यक्षण चाहिए।

ग) **वैयक्तिक समंजन**

यदि उपबोध को दूसरों की समस्याओं का समाधान प्रभावी ढंग से करना है तो उसे स्वयं एक सुसमायोजित व्यक्ति होना चाहिए।

घ) **वैयक्तिक सुरक्षा**

वाइट्स (1957) का मानना है कि उपबोधक की भूमिका में सुरक्षा की भावना का होना प्रभावी उपबोधन में अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है। यद्यपि प्रभाविता का संबंध है इस क्षेत्र से बाहर तथा अन्य जीवन अवस्थाओं में असुरक्षाएँ इतनी महत्वपूर्ण नहीं है।

च) **अकृत्रिमता**

रोज़र्स (1958) का मानना है कि उत्कृष्ट उपबोधन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपबोधक को अपने उपबोध्यों के साथ अकृत्रिम अर्थात् वास्तविक संबंध स्थापित करने में सक्षम होना चाहिए।

3. **उपबोधकों की अभिवृत्तियाँ तथा आस्थाएँ और धारणा**

उपबोधन संबंधों की प्रकृति को निर्धारित करने में यह महत्वपूर्ण है। ये इस प्रकार हैं :

क) **आस्थाएँ**

उपबोधकों को मर्यादा, समानता और वैयक्तिकता के साथ उपबोध्यों से व्यवहार करने में विश्वास रखना चाहिए। उसे उपबोध्य की मानव के रूप में सार्थकता, जीवन मूल्यों और उनकी स्वतंत्रता की आवश्यकता का सम्मान करना चाहिए। उसे अपेक्षित लक्ष्यों की प्राप्ति में बिना किन्हीं बाहरी बाधाओं के उपबोध्यों की पूरी सहायता करनी चाहिए।

ख) **मूल्य**

विलियमसन (1958) का मानना है कि उपबोधक सामाजिक और नैतिक मानकों के प्रति उदासीन नहीं रह सकते और न ही उन्हें तटस्थ रहना चाहिए। सलमर (1960) का कहना है कि उपबोधकों को सामाजिक मूल्यों के प्रति पूर्णतया जागरूक रहना चाहिए। क्योंकि उपबोधन लक्ष्य की प्राप्ति में मूल्यों में परिवर्तन लाना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

ग) **स्वीकरण**

रोजर्स (1961) स्वीकरण परिभाषित करते हुए कहते हैं कि यह उपबोध्य के प्रति एक मैत्रीपूर्ण आदर भावना है, क्योंकि वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी निरुपाधिक आत्म सार्थकता तथा मूल्य है, चाहे उसकी अवस्थिति, उसका व्यवहार या उसकी भावनाएँ कैसी भी क्यों न हों। उनका मानना है कि उपबोध्य को व्यक्ति के रूप में पूरा आदर और सम्मान दिया जाना चाहिए। टाइलर (1961) स्वीकरण के दो बुनियादी घटकों की पहचान करते हैं;

(i) यह मानना कि व्यक्ति अपने व्यवहारों में दूसरों से अलग होते हैं,

(ii) मानना कि प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव प्रयास, सोच और भावनाओं का जटिल ढांचा है। अतः उपबोधक का व्यवहार पहले से ही निश्चयात्मक नहीं होना चाहिए और इससे अभिप्राय व्यक्तिविशेष की सहायता करना है न कि उसे नियंत्रित करना।

घ) **बोध/समझ**

टाइलर (1961) ने समझ को इस प्रकार परिभाषित किया है कि ऐसी योग्यता जिससे उपबोध्य के आशय को पूर्णरूपेण तथा स्पष्ट रूप से समझा जा सके। उपबोधक को उपबोध्य से खुलकर बातचीत करनी चाहिए और उसकी व्याख्याओं का उपबोध्य के आशय के साथ सामंजस्य होना चाहिए।

4. **उपबोधक के कौशल**

उपबोधन प्रक्रिया को सुसाध्य बनाने में आवश्यक तीन कौशल हैं - सौहार्द, सतर्कता और तदनुभूति। स्वीकृति और समझ के साथ, ये तीनों कौशल गूढ़ रूप में संबद्ध हैं।

सौहार्द

इससे आशय ऐसे वातावरण से है जो उपबोधन प्रक्रिया के प्रारंभिक चरण के दौरान उपबोधक द्वारा बनाया जाता है और इसी के माध्यम से उपबोध्य के साथ सुखद/ मैत्रीपूर्ण और निरुपाधिक संबंध भी स्थापित होता है।

सतर्कता

सौहार्द स्थापित करने के लिए, उपबोधक को उपबोध्य की आवश्यकताओं, मिज़ाज और उसके द्वंद्वों को ध्यान में रखना पड़ता है और इसके लिए उपबोधक को मैत्रीपूर्ण और सतर्कतापूर्ण व्यवहार दर्शाना आवश्यक है।

तदनुभूति

तदनुभूति से आशय किसी की अनुभूति प्राप्त करना है। डायमंड (1949) तदनुभूति को व्यक्त करते हैं कि दूसरे की सोच, भावना और कार्यण को अपनी कल्पना में उतारना और इसी प्रकार के संसार की संरचना करना जैसा कि वह करता है। उपबोधन प्रक्रिया में यह एक महत्वपूर्ण कारक है।

समय-समय पर व्यक्त विभिन्न व्यक्तियों के दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए अभी तक हम ऐसी विभिन्न विशेषताओं की चर्चा कर रहे थे जो प्रभावी उपबोधक बनने के लिए आवश्यक हैं। अंत में हम निम्नलिखित तीन कारकों को ध्यान में रखते हुए प्रभावी उपबोधकों की पहचान कर सकते हैं।

i) **अनुभव** : उपबोधन आधारित विभिन्न संकल्पनाओं पर सुप्रशिक्षित और प्रभावी उपबोधक एक-दूसरे से सहमत रहते हैं और अपने उपबोध्यों से संबंध स्थापित करने में अधिक सफल भी होते हैं। वे उपबोध्यों के साथ अलग नई पहचान स्थापित करते हैं।

ii) **उपबोधन संबंध** : इससे आशय उपबोध्यों के साथ बेहतर समझ विकसित करना है। वे अपने उपबोध्यों के साथ उपयुक्त संवेगात्मक दूरी कायम रखते हैं तथा प्रतिष्ठा भावना से अपने-आपको अलग रखते हैं।

iii) **गैर-बौद्धिक कारक** : इसमें शामिल हैं; अस्पष्टता के प्रति सहनशक्ति, उपबोध्य को समझने की योग्यता, परिपक्वता और सभी के साथ अच्छे सामाजिक संबंध स्थापित करने की योग्यता। इसके अतिरिक्त दूसरों और समाज की अपेक्षाओं के प्रति ये अधिक चिंतित और संवेदनशील पाए गए हैं। अंतःव्यक्तिक संबंधों में उपबोधक धैर्यवान और गैर-आक्रामक माने जाते हैं और समस्या के निपटान में ये पर्याप्त संयम भी बरतते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए

ख) खंड के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

14. निम्नलिखित का संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

i) प्रभावी उपबोधक की किन्हीं पाँच व्यक्तित्व संबंधी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

ii) तदनुभूति से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

iii) स्वीकरण से क्या अभिप्राय है?

....

....

....

....

2.9 समूह उपबोधन

अभी तक आप उपबोधन का अर्थ, इसे नियंत्रित करने वाले सिद्धांत, इससे संबद्ध विभिन्न उपागम और उपबोधन में शामिल वास्तविक प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। जैसा कि परिभाषाओं के अध्ययन से आप पहले ही समझ चुके हैं। सामान्यतः उपबोधन ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्तिगत मामले के आधार पर अपने आप में अनोखी होती है। लेकिन, विभिन्न कारणों से, इस अवधारणा में बदलाव आया है। फिलहाल, समूह उपबोधन अवधारणा को बड़े स्तर पर स्वीकारा गया है। इसका मुख्य कारण है कि यह कम खर्चीली है क्योंकि धन के रूप में संसाधनों और प्रशिक्षित कार्मिकों की सदैव कमी रहती है। इसलिए यदि एक ही समय में व्यक्तियों के पूरे

समूह को उपबोधन प्रदान किया जाए तो यह अत्यंत लाभदायक सिद्ध होगा। समूह उपबोधन के कुछ अन्य फायदे भी हैं। समूह में बैठने से उपबोध्य की निजी पहचान छिप जाती है और वह इसी वजह से अधिक स्वाभाविक रूप से अनुक्रिया करता है। इसके अतिरिक्त समूह अंतःक्रिया कुछ विशेष अभिवृत्तियों, धारणाओं, भावनाओं, आवश्यकताओं आदि में बदलाव लाने में भी सहायक होती है। ऐसे व्यक्तियों के लिए समूह उपबोधन बड़े स्तर पर लाभदायक है जो अन्तर्वैयक्तिक अंतःक्रियाओं में शर्मीले या आक्रामक हैं, समूहों में उत्तेजित या असुविधा अनुभव करते हैं या सामाजिक अपेक्षाओं के प्रति अनिच्छुक हैं। समाज के कुछ विशेष वर्ग जैसे नशा करने वाले, उत्पीड़ित वर्ग या ऐसे कुछ अन्य वर्ग, समूह उपबोधन से अधिक फायदा उठा सकते हैं।

2.9.1 समूह उपबोधन का अर्थ

समूह उपबोधन, व्यक्तिगत उपबोधन का विस्तार है। इसके अंतर्गत व्यक्तियों का समूह, वृत्तिक उपबोधक के साथ मिलजुल कर सीखता है कि वैयक्तिक और अंतर्वैयक्तिक समस्याओं को किस प्रकार दूर किया जा सकता है। इसका मूल उद्देश्य ऐसे व्यक्तिगत पर्यावरण का निर्माण है जो आत्मानुभूति विकसित करने में प्रत्येक उपबोध्य के लिए सहायक है। यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत सदस्यों के बीच मुक्त संप्रेषण को प्रेरित करना और इसका रखरखाव शामिल है जिससे एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझा और इसका मूल्यांकन किया जा सके। यह ऐसा साधन है जिससे सामाजिक क्षेत्र में हँसते-खेलते समस्याओं का समाधान किया जाता है। विशेष और नियंत्रित सामूहिक अंतःक्रिया के माध्यम से हर उपबोध्य के व्यक्तित्व और व्यवहार में तीव्र सुधार लाने में समूह उपबोधन सहायक है।

समूह उपबोधन में कुछ उपबोध्य अपनी समस्याओं की मिलजुल कर खोजबीन करते हैं और उनका विश्लेषण भी करते हैं जिससे समस्याओं को वे बेहतर तरीके से समझ सकें, समस्याओं का सामना करना सीख सकें और उपलब्ध विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कर सकें और अंतिम निर्णय भी ले सकें। समूह उपबोधन उपबोध्यों को एक-दूसरे के निकट लाने में सहायता प्रदान करता है और उन्हें संवेगात्मक सहयोग प्रदान करता है ताकि वे अपने-आप को और अन्य व्यक्तियों को समझ सकें। जैसे-जैसे समूह संबंध सुदृढ़ बनते हैं, समान निर्देश के अंतर्गत सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति पर आधारित भावना विकसित होती चली जाती है।

समूह उपबोधन में व्यक्तिगत उपबोधन के सभी तीनों आयाम अर्थात् उपचारात्मक, निवारक और विकासात्मक आयामों का समावेश होता है। विद्यालयों में सामान्यतौर पर निवारक और विकासात्मक पहलुओं पर जोर दिया जाता है क्योंकि विद्यालयों से अभिप्राय ऐसे संस्थानों से है जो मुख्य रूप से ऐसे विद्यार्थियों को शिक्षण व निर्देशन प्रदान करते हैं जिनमें से अधिकांश विद्यार्थी सामान्य होते हैं। इसलिए विद्यालयों में समूह उपबोधन मुख्य रूप से समस्याओं से बचने पर जोर देता है ताकि बाद में ये सौहार्दपूर्ण विकास में बाधा न खड़ी करें या विद्यार्थियों को अक्षम न बनाए।

2.9.2 समूह उपबोधन की अवधारणाएँ

समूह उपबोधन कुछ विशेष अवधारणाओं पर आधारित है। पहली अवधारणा है कि व्यक्तियों में समूह के सदस्यों में परस्पर विश्वास रखने और उनके विश्वास को प्राप्त करने की आवश्यक प्रतिभा क्षमता होती है। उन्हें समूह के अन्य सदस्यों के प्रति सरोकार होना चाहिए। इससे समूह संबंध सुदृढ़ बनते हैं और प्रत्येक सदस्य के लिए सहयोग और सुरक्षा का वातावरण विकसित होता है जिसमें वे मिलजुल कर व्यक्तिगत समस्याओं का अनुभव करते हैं और उनके निवारण पर विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।

दूसरी अवधारणा यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में स्वाभाविक क्षमता होती है कि वह आत्म-परिवर्तन का उत्तरदायित्व ले सके। दूसरी ओर प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करता है कि उसका जीवन अन्य व्यक्तियों के नियंत्रण में है और इसी वजह से उसके पास कोई भी विकल्प नहीं रह जाता सिवा इसके कि वह विध्वंसकारी व्यवहार प्राप्त करने के लिए बाध्य हो जाता है। तीसरी अवधारणा है कि समूह सदस्य, समूह प्रक्रिया के उद्देश्यों और क्रियाविधियों से यह सीख और समझ सकते हैं कि मुख्य उद्देश्य सदस्यों में सुधार लाना है न कि उन्हीं के अनुरूप चलना।

2.9.3 समूहों का संरचनीकरण

1. सदस्यों का चयन और उनका प्रेरण

समूह उपबोधन के लिए सदस्यों के चयन और उनके प्रेरण के लिए सर्वाधिक प्रयुक्त किया जाने वाला तरीका है कि संबद्ध समूह में भेजने से पहले उपबोध्य से व्यक्तिगत रूप में बातचीत की जाए। ऐसी पहली मुलाकात (साक्षात्कार) से उपबोधक को उपबोध्य की पहचान करने का अवसर मिलता है जिससे शुरू से ही आदर, स्वीकरण, आश्वासन की अनुभूति हो सके और साथ ही साथ उपबोधक उपबोध्य को निर्णय लेने में भी सहायता करता है कि क्या वह उपबोधन समूह में प्रवेश चाहता है या नहीं। यदि हाँ तो वह कार्य की प्रकृति और इसके लाभों, नियमों आदि की संक्षिप्त जानकारी से भी उसे अवगत कराता है। ऐसी आधारभूत जानकारी से उपबोधक निर्णय ले पाता है कि क्या समूह उपबोधन से सभी लाभान्वित होंगे या नहीं।

2. समूह का आकार

समूह उपबोधन प्राप्त करने वाले समूह का आकार अपेक्षाकृत छोटा होना चाहिए। यद्यपि किसीं विशेष संख्या का सुझाव देना कठिन होगा, फिर भी लगभग छह से दस सदस्यों को ही किसी एक समूह में शामिल करना चाहिए। बड़े समूहों को नियंत्रित करना कठिन होता है। लेकिन समूह बहुत छोटे भी नहीं होने चाहिए क्योंकि इससे संसाधन भी अति सीमित हो जाएंगे और भाग लेने के दबाव से तनाव भी बढ़ जाएगा। इसके अतिरिक्त छोटे समूह में एक या अधिक सदस्यों के अनुपस्थित होने से पूरा समूह निष्क्रिय हो जाता है।

3. समूह संघटन

उपबोधन के लिए समूहों का संघटन सदैव वाद-विवादों से घिरा रहता है। समस्या, शिक्षा, बुद्धि, आयु, लिंग या ऐसे ही अन्य पहलुओं के आधार पर समूह सजातीय या विषमजातीय हो, इस पर भी अलग-अलग राय कायम है। हिंकेले और हरमैन के अनुसार, "विभिन्न प्रकार की शिकायतों और लक्षणों से संबद्ध व्यक्तियों को विषमजातीय समूह में शामिल किया जाना चाहिए।" हरशैनसन और पेवर (1987- ई.ए.एन) का मानना है कि समान विचारधारा और समान उद्देश्यों से जुड़े उपबोध्यों को एक साथ उपबोधन दिया जाना चाहिए क्योंकि एकरूपता से कार्य सुचारू ढंग से हो पाता है और सत्र के दौरान समूह संबंध भी अधिक सुदृढ़ बनते हैं।" गाज़दा (1976) का तर्क है कि समान आयु के उपबोध्यों से बने समूह में सभी सदस्यों का ध्यान ऐसे विकासात्मक सरोकारों की ओर केंद्रित किया जा सकता है जो सभी सदस्यों के लिए उचित हैं। कभी-कभी महिला और पुरुषों के एकजुट होने से महिलाओं के लिए अवसर बढ़ जाते हैं और पुरुष एक-दूसरे आचार-व्यवहार पर अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। चाहे मत कितने भी भिन्न हों, फिर भी सभी का मानना है कि अत्यधिक विषमता अवांछनीय हैं। इसी प्रकार से अत्यधिक क्रुद्ध और आक्रामक व्यक्ति को भी समूह में शामिल करना पसंद नहीं किया जाता क्योंकि सौहार्दपूर्ण वातावरण के निर्माण में वह सदैव बाधक सिद्ध होता है। इसी प्रकार से पुराने रोगी या केवल अपनी ही बात पर अड़े रहने वाले उपबोध्य को भी समूह उपबोधन में शामिल नहीं किया जाना चाहिए। ऐसे उपबोध्य को व्यक्तिगत उपबोधन के माध्यम से संतुष्ट किया जाना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि समूह सदैव संतुलित बना रहे। क्रुद्ध और शांतमय स्वभाव के उपबोध्यों के बीच उचित दूरी बनाए रखनी चाहिए।

4. सभा का समय और अवधि

बैठक का आयोजन प्रायः कितनी बार किया जाना चाहिए, इस पहलू पर विभिन्न अनुशंसाएँ की गई हैं। समूह में शामिल सदस्यों की संख्या और उनकी उन बैठकों के आधार पर जिनमें समूह उपबोधन होता है बैठक का आयोजन और अवधि का निर्धारण किया जाता है। अधिकांशतः सप्ताह में एक या दो बार बैठक के आयोजन की अनुशंसा की गई है। सामुदायिक एजेंसी, कालेज या निजी कार्यालय में दो घंटे के साप्ताहिक सत्र की

अनुशंसा हुई है। परंतु स्कूल विद्यार्थियों के लिए सप्ताह में दो बार थोड़ा-थोड़ा सा समय देना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि छोटे बच्चे जल्दी थक जाते हैं या यह कहें कि उनकी अवधान विस्तृति छोटी होती है और यदि समय ज्यादा हो तो वे कक्षा में आना पसंद नहीं करते। स्कूलों में आमतौर पर 11 से 15 सप्ताह का समय उपबोधन के लिए निर्धारित किया जाता है। यह अधिक सुविधाजनक है और साथ ही साथ समूह के उद्देश्यों की प्राप्ति में यह पर्याप्त समय को सुनिश्चित भी करता है।

5. **भौतिक विन्यास**

संवेगात्मक वातावरण और उपबोधक की विशेषताओं की तुलना में उपबोधन कक्ष का भौतिक विन्यास कम महत्वपूर्ण माना गया है। यदि उपबोधक सक्षम हो तो अनुपयुक्त भौतिक विन्यास के अंतर्गत भी सदस्य समूह उपबोधन भली-भाँति प्राप्त कर सकते हैं। हाँ ध्यान दें कि उपबोधन सत्र के दौरान किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो और न ही उपबोधन से जुड़ी गोपनीयता भंग हो। कक्ष बड़ा होने की बजाए छोटा होना चाहिए और बैठने की व्यवस्था भी नम्य और विविध होनी चाहिए। औपचारिक और स्थायी व्यवस्था की बजाए बैठने की व्यवस्था गोलाकार होनी चाहिए और सदस्य को उसकी मनपसंद सीट मिलनी चाहिए।

2.9.4 समूह उपबोधन की प्रक्रिया

समूह उपबोधन प्रक्रिया को विभिन्न अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। ये अवस्थाएँ हैं:

- **प्रारंभिक अन्वेषण अवस्था**

प्रारंभिक सत्रों में समूह सदस्य प्रायः एक-दूसरे से अपरिचित होते हैं। वे ऐसी स्थिति में शायद एक-दूसरे से बातचीत करना पसंद न करें और यदि करें भी तो केवल अनावश्यक मुद्दों पर चर्चा करें। वे प्रारंभ में शर्मीले और सहमे से नज़र आते हैं। वे अन्य सदस्यों की तुलना में केवल अपने-आप पर ही ध्यान केंद्रित करना पसंद करते हैं। ऐसी अवस्था में उपबोधक अपनी भूमिका की व्याख्या के साथ-साथ समूह सदस्यों की भूमिकाओं का भी वर्णन करता है। इसके लिए उसे अनुकूल (सुकर) स्थितियों का निर्माण करना पड़ता है ताकि वह दूसरों का विश्वास जीत सके और सच्ची भावना, स्नेह और सदस्यों के बारे में बिना कोई गूढ़ राय कायम किए उन्हें ध्यान से सुनकर वह अपना कार्य पूरा कर सकता है। उपबोधन के मध्य सदस्यों को अपने विचारों और भावनाओं को खुलकर अभिव्यक्त करने के लिए अभिप्रेरित किया जाता है। उपबोधक सदस्यों के बीच निदर्शन और स्वयं प्रतिरूपण कर, सुसाध्यपूर्ण, संप्रेषी अभिवृत्ति और कौशलों का निर्माण करता है। जब उपबोध्य पाते हैं कि उपबोधक उनके सही और गलत विचारों को सकारात्मक ढंग से स्वीकार करता है तो वे भी उसकी बातों को तत्परता से और यथोचित ढंग से स्वीकार करते हैं।

- **संक्रांति अवस्था**

जैसे-जैसे समूह प्रारंभिक अन्वेषण अवस्था से अगली अवस्था की ओर अग्रसर होता है, समूह सदस्यों का ध्यान गूढ़ रूप से इस ओर आकर्षित किया जाता है कि यदि वे प्रगति चाहते हैं तो पहले अपने-आपको खुलकर समझें कि वे क्या हैं, उनके गुण और दोष कौन से हैं और इसी प्रकार से दूसरे भी उनके स्वभाव पर अपने विचार व्यक्त करें जिससे तत्परता से वे एक-दूसरे से विचारों का आदान-प्रदान कर सकें। यद्यपि इस अवस्था तक आते सभी सदस्यों में एक-दूसरे के प्रति विश्वास जाग्रत हो जाता है लेकिन फिर भी यह भावना अभी पक्की नहीं बन पाई है और वे उत्सुक, उभयभावी और रक्षात्मक रूप से कार्य करते हैं, क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि ज्यों-ज्यों वे अधिक गहन रूप से अपने आपको खोजेंगे, उनके समक्ष कष्टकर संवेदनाएँ और भावनाएँ प्रकट होती चली जाएगी। इस अवस्था पर कुछ को भय रहता है कि यदि वे अपनी भावनाओं को खुलकर व्यक्त करेंमे तो बाकी सदस्य इन्हें अस्वीकृत कर देंगे। इसी प्रकार से कुछ सोचते हैं कि ऐसी अभिव्यक्ति के दौरान उपबोधक और अन्य सदस्य उनका उपहास करेंगे। यह ऐसी अवस्था है कि सदस्यों के बीच या उपबोधक से शक्ति प्राप्त करने, नियंत्रण या आधिपत्य जमाने के लिए,

किए जाने वाले संघर्ष से द्वंद्व या विद्रोह की भावना भी जाग्रत भी हो सकती है। समूह सदस्य खुलकर एक-दूसरे की भर्त्सना करने में प्रवृत्त होते हैं। वे कई बार उपबोधक के नेतृत्व को भी शक की निगाह से देखते हैं।

ये सभी व्यवहार कष्टकारी भावनाओं की खोज में अवरोध उत्पन्न करते हैं। अवरोध/ प्रतिरोध ऐसा संकेत है जिससे समस्याओं के निपटान में सदस्य अधिक सक्रिय हो जाते हैं। प्रतिरोध दर्शाने के विविध तरीके हैं, जैसे - कुछ सत्रों में भाग न लेना, अन्यों की उपेक्षा करना, या बिना भावनाओं की अभिव्यक्ति को बोलते रहना। प्रतिरोध उत्पन्न होने की स्थिति में उपबोधकों को सदैव सदस्यों को प्रेरित करना चाहिए कि द्वंद्वों का समाधान करें तथा अधिक प्रामाणिकता से आत्म-अन्वेषण के लिए आगे बढ़े।

- **कार्यकारी चरण**

इस अवस्था में सदस्य एक-दूसरे के काफी निकट आ जाते हैं और दूसरों की समस्याओं के प्रति अधिक जागरूक हो जाते हैं। चूँकि इस अवस्था तक विश्वास बढ़ जाता है, अब वे भावनाओं और विचारों के आदान-प्रदान में अधिक जोखिम उठाने में भी नहीं कतराते। इसलिए वे एक-दूसरे को रचनात्मक प्रतिपुष्टि देते हैं। अब वे एक-दूसरे को अधिक सहयोग और सहायता प्रदान करना चाहते हैं। अब एक-दूसरे पर उनका विश्वास गहरा हो जाता है। लेकिन इस समूह घनिष्ठता या अधिक मेलजोल से झूठी संबद्धता उत्पन्न हो जाती है जिनके अंतर्गत सदस्य एक-दूसरे को बचाने और नकारात्मक भावनाओं को दबाने की चेष्टा करते हैं।

इस अवस्था में उपबोधकों को चाहिए कि वे समूह सदस्यों को उनके व्यवहारों की वास्तविकता से अवगत करवाएं और उनसे आग्रह करें कि समूह में रह कर सदस्यों ने जो कुछ भी प्राप्त किया है, वे ऐसे विचारों को परिवर्तित करने के लिए एक-दूसरे को चुनौती दें। जैसे, यदि कोई सदस्य यह कहता है कि उसे अपने विचारों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए परंतु वस्तुतः समूह में या समूह से बाहर निष्क्रियता का निदर्शन करता है, समूह ऐसे सदस्य को आग्रही बनने के लिए जोर दे सकता है।

धीरे-धीरे समूह उत्पादक रूप धारण कर लेता है और महत्वपूर्ण समस्याओं के गूढ़ अध्ययन के प्रति वचनबद्ध हो जाता है और समूह में होने वाली अंतःपरिवर्तनों पर पूरा ध्यान देना भी आरंभ कर देता है। इस अवस्था में अब वे उपबोधक पर कम निर्भर करते हैं और विशिष्ट व्यक्तिगत-लक्ष्यों और समूह लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ध्यान केंद्रित करना शुरू कर देते हैं। समूह सदस्य एक-दूसरे से आसानी से तर्क-वितर्क कर सकते हैं और चुनौतियों को बदलाव लाने के ठोस साधनों के रूप में स्वीकार करना पसंद करते हैं। समूह में जब व्यवहारपरक और मनोवृत्तिपरक परिवर्तन लाने पर अंतःक्रिया का आरंभ होता है तो सदस्य इस चुनौती को स्वीकार करते हुए रोजाना के जीवन में बदलाव लाने का प्रयास करते हैं।

उपबोधन के अंतर्गत सैद्धांतिक अभिविन्यासों के तदुनुरूप विविध तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। भूमिका अभिनय, मनो-नाटक, आग्रहित प्रशिक्षण आदि भी ऐसी तकनीकें हैं जिनका सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है।

- **समेकन और समाप्ति**

समाप्ति का अर्थ केवल उपबोधन प्राप्त करना बंद करना नहीं है। वास्तव में यह 'समूह उपबोधन' प्रक्रिया की महत्वपूर्ण अवस्था है। समूह उपबोधन में समाप्ति की तारीख को पहले से तय करना एक सामान्य बात है। बेहतर होगा यदि अंतिम सत्र से पहले के तीन या चार सत्रों में समाप्ति सत्र के बारे में विचार-विमर्श करना आरंभ कर दिया जाए। इससे निर्भरता से मुक्ति से पहले मनोवैज्ञानिक या संवेगात्मक भावनाओं को नियंत्रित करने में पर्याप्त समय और बाहरी दुनिया में नए अनुभव अंतरित करने के प्रति पर्याप्त समय मिल जाता है और अधूरी समस्याओं को निर्धारित समय में पूरा किया जा सकता है, व्यक्तिगत सदस्यों के नए अनुभवों पर प्रकाश डाला जा सकता है और सोच-विचार किया जा सकता है कि इन अनुभवों के आधार पर सदस्य अपनी पहचान कैसे बना सकते हैं। उपबोधन सत्रों की समाप्ति के उपरांत यदि आवश्यक हो तो भावी सहायता

के लिए सुझाव भी दिए जा सकते हैं। सहयोगपरक समूह या किसी अन्य बड़े समूहों की सदस्यता प्राप्त करके या कार्यशालाओं में भाग लेकर नवीन अधिगम की व्यावहारिकता पर विशेष सुझाव भी प्राप्त किए जा सकते हैं।

2.9.5 समूह उपबोधन के लाभ और सीमाएँ

लाभ

क) यह विविध रूपों से कम खर्चीला है क्योंकि समूह उपबोधन के अंतर्गत एक साथ व्यक्तियों की बड़ी संख्या को उपबोधक द्वारा लाभान्वित किया जा सकता है और इससे समय और पैसे की भी बचत होती है।

ख) इससे व्यक्तियों को अपनी अभिवृत्तियों, आदतों तथा निर्णयन को समाजीकृत करने में सहायता मिलती है।

ग) इससे हर सदस्य को निरंतर प्रेरणा मिलती है कि वह हर कार्य को ऐसे सीखे जैसे कि वह वास्तविक जीवन में कोई कार्य कर रहा हो। विचारों और भावनाओं को खुलकर और सही तरीके से अभिव्यक्त करके समूह संबंध सुदृढ़ बनते हैं और उद्देश्य सामूहिक रूप में परिवर्तित हो जाता है जिससे उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता मिलती है। सामान्य समस्याओं से जुड़े मुद्दों पर चर्चा करने से सदस्यों के अंतःव्यक्तिगत संबंध मजबूत बनते हैं। समूह में वे ऐसे व्यावहारिक क्षेत्र प्राप्त करते हैं जिसमें वे दूसरों से जुड़ने के अधिक लचीले और संतोषजनक नए तरीकों की जानकारी प्राप्त करते हैं। इसके अलावा सदस्य अपने मूल्यों का महत्व समझते हैं और इसी परिवेश में अच्छे मानवीय संबंध स्थापित करने के महत्व को भी समझ पाते हैं।

   कुछ सदस्य जो व्यक्तिगत उपबोधन से लाभान्वित नहीं होते, वे समूह उपबोधन से समस्या का निवारण करने में सफल हो जाते हैं। समूह उपबोधन स्थिति में उत्तेजना, अकेलेपन की भावना कम हो जाती है और सदस्य खुलकर बातचीत करने में सक्षम हो जाता है। इसके अतिरिक्त समूह उपबोधन से उपबोधक को भी समूह निर्माण की प्रारंभिक अवस्था में व्यक्तियों का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता है।

घ) **सीमाएँ**

   समूह उपबोधन सभी के लिए उपयुक्त नहीं है। कुछ व्यक्ति समूह में भय महसूस करते हैं और कुछ व्यक्तियों में सहनशक्ति का स्तर अत्यंत निम्न होता है और वे समूह की माँगों के अनुरूप व्यवहार बदलने में सक्षम नहीं होते। इसी प्रकार से समूह में व्यक्तिगत और निजी समस्याओं को उजागर नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त समूह उपबोधन के दौरान स्थिति को नियंत्रित करना उपबोधक के लिए कठिन कार्य है और कभी-कभी सदस्यों से अच्छे संबंध स्थापित करने में उपबोधक गंभीर रूप से पिछड़ जाता है। अतः उपबोधक को उपयुक्त कारकों को ध्यान में रखते हुए निर्णय लेना चाहिए कि किसी विशिष्ट समूह और संबद्ध समस्या के लिए समूह उपबोधन उपयुक्त रहेगा या नहीं।

व्यक्तिगत उपबोधन और समूह उपबोधन

व्यक्तिगत उपबोधन और समूह उपबोधन के बीच विभिन्नताएँ और समानताएँ भी हैं।

समानताएँ

क) दोनों का उद्देश्य समान है अर्थात् उपबोध्य को आत्म-बोध की प्राप्ति में सहायता प्रदान करना और उसे समेकित, आत्म-निर्भर, आत्म-निदेशित और जिम्मेवार व्यक्ति बनने में भी सहायक होना।

ख) दोनों में समान तकनीकों का प्रयोग होता है जैसे, भावनाओं को स्पष्ट करना और विषयवस्तु का निपटारा करना आदि का प्रयोग किया जाता है।

ग) गोपनीयता को बनाए रखना।

घ) सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है परिवेश जो कि स्वीकरणीय, अनुज्ञात्मक और सुरक्षित होता है।

च) दोनों माध्यमों से उपबोधन प्राप्त करने वाले ऐसे व्यक्ति सामान्य हैं जो तनाव, मायूसी, कुंठा उत्तेजना या अन्य विकासपरक समस्याओं से संघर्ष करने की चेष्टा कर रहे हैं।

विभिन्नताएँ

क) व्यक्तिगत उपबोधन एकैकी तथा मुखाभिमुख संबंध को दर्शाता है, जिसमें उपबोधक केवल अपने उपबोध्य के साथ आमने-सामने बैठ कर उपबोधन देता है। लेकिन समूह उपबोधन में उपबोधक उपबोध्यों की बड़ी संख्या को एक साथ उपबोधन प्रदान करता है।

ख) व्यक्तिगत उपबोधन में उपबोध्य सिर्फ सहायता की प्राप्ति करता है जबकि समूह उपबोधन में उपबोध्य दूसरों को सहायता भी प्रदान करता है।

ग) समूह उपबोधन में समूह गतिकी के सिद्धांत के काफी अनुप्रयोग शामिल होते हैं जबकि व्यक्तिगत उपबोधन में उपबोधक और उपबोध्य का आपसी संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) खंड के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

15. बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलतः

i) उपबोधन केवल एकैकी स्थिति में ही दिया जा सकता है।

ii) समूह उपबोधन में उपबोध्य की सहायतार्थ व्यावसायिक विशेषज्ञों का समूह होता है।

iii) समूह उपबोधन मदिरापान करने वालों के लिए उपयुक्त है।

iv) समूह उपबोधन के लिए बड़े समूह उपयोगी हैं।

iv) अत्यधिक क्रुद्ध और गर्म मिजाज के व्यक्तियों को समूह उपबोधन से सर्वाधिक लाभ पहुँचता है।

v) समूह उपबोधन के अंतर्गत उपबोधक के कौशल की तुलना में भौतिक परिवेश (अभिविन्यास) अधिक महत्वपूर्ण है।

16. निम्न प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखें।

i) समूह उपबोधन के दो लाभों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

ii) समूह उपबोधन की सीमाएँ कौन सी हैं?

....

....

....

....

iii) व्यक्तिगत उपबोधन और समूह उपबोधन के बीच के दो अंतरों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

iv) समूह उपबोधन की अवधारणाएँ कौन-सी हैं?

....

....

....

....

2.10 उपबोधन से जुड़े विशिष्ट क्षेत्र

अभी तक, हम उपबोधन की, इसके विभिन्न पहलुओं और संबद्ध संकल्पनाओं के संदर्भ में सामान्य विवेचना कर रहे थे। लेकिन उपबोधन से जुड़े कुछ ऐसे क्षेत्र भी हैं जिनमें उपबोधक के लिए विशिष्ट विशेषज्ञता रखना और तकनीकों में सक्षम होना अनिवार्य है। इन क्षेत्रों को उपबोधन के विशेष क्षेत्र माना गया है।

2.10.1 पारिवारिक उपबोधन

पारिवारिक उपबोधन के अंतर्गत वृत्तिक उपबोधक और परिवार के बीच अंतःक्रिया उत्पन्न होती है। जिसमें परिवार के सदस्यों के आपसी संबंध सुधरते हैं और प्रत्येक सदस्य की व्यक्तिगत अभिवृद्धि में बढ़ोतरी होती है और परिवार के सदस्यों में एक-दूसरे के प्रति बेहतर तालमेल और स्वस्थ अन्तःक्रिया भी बढ़ती है।

पारिवारिक उपबोधन चार विशिष्ट अवस्थाओं से होकर गुजरता है। प्रारंभिक अवस्था में संबंध विकसित करना और समस्या का निर्धारण करना शामिल है। मध्य अवस्था में परिवार के सदस्य अपनी समस्या के लिए उत्तरदायी कारकों की संवेगात्मक स्तर पर समझ विकसित करते हैं। अंतिम अवस्था में परिवार की सहायता की जाती है ताकि व्यवहार के विभिन्न वैकल्पिक तरीकों की पहचान करते हुए समूची पारिवारिक व्यवस्था को रूपांतरित किया जा सके। चतुर्थ, समाप्ति अवस्था निर्भरता मुक्ति अवस्था है जिसमें बिना उपबोधक की सहायता के परिवार को अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की शिक्षा दी जाती है।

प्रारंभिक सत्रों में उपबोधक सदस्यों से सौहार्द, विश्वास और भरोसा स्थापित करने का प्रयास करता है। इन सत्रों में प्रत्येक सदस्य को महत्वपूर्ण माना जाता है और आग्रह किया जाता है कि

वे अपने बारे में स्वयं अधिकाधिक व्यक्त करें। सदस्यों को प्रेरित किया जाता है कि वे अपनी समस्या को उजागर करें और विचार-विमर्श करें कि वे अपने परिवार से क्या आशा करते हैं। उपबोधक परिवार की कार्यशैली (गतिकी), शक्ति संरचना का ध्यानपूर्वक पता लगाते हैं और देखते हैं कि परिवार के आपसी संप्रेषणात्मक रूप और सकारात्मक संसाधन कौन से हैं। सदस्यों की सहायता की जाती है कि वे अपने आप सामाजिक इकाई के रूप में प्रत्यक्षण करें। यदि आवश्यक हो तो पारिवारिक वृत्त, विस्तृत परिवार सदस्यों से अंतःक्रिया आदि से भी खोज-बीन की जा सकती है। यदि एक बार समस्या पर दुबारा से ध्यान केंद्रित हो जाए और उद्देश्य निर्धारित कर लिया जाए और प्रत्येक सदस्य की वचनबद्धता स्पष्ट हो तो निर्णय लिया जा सकता है कि सभी सदस्य एक ही सत्र या अलग-अलग सत्रों में उपबोधन प्राप्त करेंगे। मध्य अवस्था में समस्या की संवेगात्मक समझ की प्राप्ति के लिए सदस्यों की सहायता की जाती है। इस अवस्था में उपबोधक संवेगावेशित समस्या को पूरी तरह से अनावृत कर देता है जैसे किसी निकटतम संबंधी के मरने से शोक में डूबे रोगी को बाहर निकालना, तलाक हो जाना, बचपन का खो जाना आदि। इन सभी बातों को विस्तृत रूप से अनावृत रोगी के सामने रखा जाता है। इस अवस्था में उपबोध्य अनुभव करते हैं कि संबंधों को अपनी बेहतरी के लिए परिवर्तित भी किया जा सकता है। इससे भूमिकाएँ स्पष्ट, अधिक लचीली हो जाती हैं और संप्रेषण प्रत्यक्ष और रचनात्मक बन जाता है।

अंतिम चरण में सदस्यों को प्रेरित किया जाता है कि वे इन परिवर्तित अंतःसंबंधों को परिवार में विकसित करें और समाप्ति चरण में परिवार उपबोधक की मदद के बिना व्यावहारिक दृष्टि से कार्य करना आरंभ कर देता है। इसके पश्चात् घटित होने वाली परिस्थितियों का पुनर्विलोकन (review), भावी समस्याओं पर चर्चा और उनका निपटान कैसे किया जाएगा आदि बातों पर ध्यान देना सहायक सिद्ध होता है।

2.10.2 वृत्तिक उपबोधन

व्यावसायिक उपबोधन से आशय ऐसा वृत्तिक संबंध कायम करना है जिसके अंतर्गत किसी भी व्यवसाय के चयन, प्रवेश प्राप्त करने की तैयारी और प्रभावी रूप से कार्य करने में उपबोध्यों को सहायता प्रदान की जाती है।

ई.जी.विलियमसन (1939) के अनुसार, "उपबोध्य की समस्याओं को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है अर्थात् वरण का अभाव, अनिश्चित वरण विकल्प, अविवेकपूर्ण वरण तथा रूचि और अभिवृत्ति के बीच असमन्वय। इन संदर्भो में उपबोधन की प्रक्रिया, सामान्य उपबोधन से काफी मिलती-जुलती है क्योंकि पसंद विकसित करना और व्यवसाय की स्थापना, सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभाव और व्यक्तित्व विकास से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं।"

उपबोध्यों की समस्याओं की पहचान और स्पष्टीकरण, एकत्रित जानकारी और स्थापित सौहार्द के माध्यम से होता है। इसी जानकारी के आधार पर उपबोधक परिकल्पना निर्माण करता है। उपबोध्य की समस्या उपबोधक की सहायता से समाधान किया जाता है। तत्पश्चात् इसका मूल्यांकन किया जाता है। वृत्तिक उपबोधन से जुड़ा मुख्य अंतर है कि इसमें व्यावसायिक क्षेत्रों से अतिरिक्त जानकारी भी प्राप्त करनी पड़ती है। व्यावसायिक इतिहास की समीक्षा की जाती है और यदि आवश्यक हो तो व्यावसायिक परीक्षण किए जाते हैं और विभिन्न व्यवसायों और प्रशिक्षण संभावनाओं की जाँच-परख की जाती है। अंत में अपनाए जाने वाले व्यवसाय या विकास के लिए निर्णय लिए जाते हैं। भारत में व्यावसायिक उपबोधन प्राथमिक रूप से शिक्षा तक सीमित है। सामुदायिक एजेंसियों और व्यावसायिक क्षेत्रों में कर्मचारियों को उपबोधन देने में इसका विस्तृत महत्व है। इसी प्रकार से विशिष्ट उपबोधक विकलांग और सुविधावंचित व्यक्तियों को रोजगार दिलाने में व्यावसायिक पुनर्वास स्थापित करने में सहायता करते हैं। इस क्षेत्र में किया गया व्यापक शोध दर्शाता है कि अधिकांशतः व्यावसायिक उपबोधन लाभकारी है।

2.10.3 मादक द्रव्य व्यसनिकों व मद्य व्यसनिकों का उपबोधन

हमारे देश में नशे की लत महामारी की तरह फैल रही है। इसके कुप्रभाव अनगिनत हैं। नशीले पदार्थ मनोसक्रिय होते हैं जिसके कारण मूड में, प्रत्यक्षण में तथा व्यवहार में परिवर्तन आ जाता

है। लेकिन इन पदार्थों के सेवन से भूख मर जाती है जिससे शरीर में पोषक तत्वों की भयंकर कमी हो जाती है और परिणामस्वरूप मनुष्य गंभीर रोगों से ग्रस्त हो जाता है। इसके सेवन से अंत-वैयक्तिक समस्याएँ गंभीर रूप धारण कर लेती हैं जैसे घर में रोज कलेश होना, छोटे बच्चों से मारपीट करना, लैंगिक विकार आदि। इनका सेवन मनुष्य को शारीरिक और मानसिक तौर पर इन पदार्थों पर निर्भर बनाता है जिससे मनुष्य इनसे छुटकारा पाने में लगभग असमर्थ हो जाता है। ऐसे अपराध निरंतर बढोतरी पर हैं जिनमें नशाखोर नशीले पदार्थ खरीदने के लिए पैसा हथियाने में सड़कों-गलियारों आदि में अपराध करते हैं।

मादक पदार्थ व्यसन छुड़ाने से संबद्ध उपबोधक जोर देते हैं कि रोगी का उपचार के अत्यधिक संरचित स्तरीय और सुरक्षित पर्यावरण के अंतर्गत आवसीय स्थिति में किया जाना चाहिए। क्योंकि यह महत्वपूर्ण है कि उन्हें बुरे वातावरण के प्रभावों से बचाया जाए। इसके अतिरिक्त व्यसनियों को सहायता करने के बहुत से मामलों में दवा देने की सलाह भी दी जाती है ताकि वे ऐसे पदार्थों पर निर्भर होने की आदत को छोड़ सकें।

मादक प्रतिरोधी उपबोधक अस्पताल में भर्ती होने की आवश्यकता को नकारते हुए, आग्रह करते हैं कि व्यसनियों को उपबोधन कार्यक्रम में भाग लेना चाहिए। उनका मानना है कि प्रथम चरण के रूप में व्यसनियों को मद्यपान से दूर रखा जाए क्योंकि इसके बिना उपयुक्त सौहार्द या संप्रेषण स्थापित करना असंभव है। इसी प्रकार से परिवार के सदस्यों को भी उपबोधित किया जाए और अपनी गलत भूमिकाओं, तथा गलत संप्रेषण से अवगत कराया जाए क्योंकि सदस्यों में पर्याप्त समन्वय या संप्रेषण स्थापित न होने से समस्याओं की उत्पत्ति होती है। व्यसनी और परिवार के सदस्य, दोनों को सहायता मिलनी चाहिए जिससे वे अपनी सार्थकता को समझें और अपने व्यवहार से जुड़े उत्तरदायित्व की भावना की अनुभूति कर सकें। वे अपनी आवश्यकताओं को प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त करना सीखते हैं। बचपन के अनुभवों की खोज से उन दमित नकारात्मक भावनाओं से अवगत हो जाते हैं जो उनके वर्तमान व्यवहार को प्रभावित कर रही है। वे तनाव से जूझने के नए तरीकों की जानकारी भी प्राप्त करते हैं। व्यसनियों को समूह उपबोधन की आवश्यकता है क्योंकि सामाजिक कौशलों में वे अक्सर पिछड़े रहते हैं।

सहायक सेवाएँ जैसे मनोरंजनात्मक या व्यावसायिक चिकित्सा नई रूचियों को विकसित करने में सहायक होती हैं। पोषणात्मक मार्गदर्शन खाने की अच्छी आदतों को विकसित करने में सहायक होता है। उपबोधन समाज में उनकी सफलतापूर्वक वापसी को सुदृढ़ बनाता है और इससे समस्या का स्थायी निवारण भी संभव है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

17. बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलतः

    i) पारिवारिक उपबोधन से आशय उपबोधक द्वारा दी जाने वाली ऐसी मनोवैज्ञानिक सहायता है जो वह अपने परिवार के सदस्यों और संबंधियों को देता है।

    ii) वैवाहिक उपबोधन और पारिवारिक उपबोधन समान हैं।

    iii) व्यवसनियों के परिवार के सदस्यों को उपबोधन देना आवश्यक है।

18. लिंग चिकित्सक और वैवाहिक उपबोधक में क्या अंतर है।

....

....

....

2.11 उपबोधन का मूल्यांकन

मूल्यांकम से आशय निर्धारित मानकों के अंतर्गत कार्यक्रम प्रभाविता की जाँच करना है। यह विद्यालय में संशोधित समायोजन, उपयुक्त व्यावसायिक चयन, यथार्थवादी आत्मधारणा या बेहतर ग्रेड प्राप्ति के रूप में इसे समझा जा सकता है। उपबोधन के संदर्भ में, मूल्यांकन का अर्थ यह निर्धारित करना है कि इन लक्ष्यों की प्राप्ति हुई है या नहीं और यदि हाँ तो किस सीमा तक। ऐसे विभिन्न उपबोधन उपागमों और स्थितियों का मूल्यांकन भी आवश्यक है जिनमें उपबोधन सर्वाधिक प्रयुक्त किया जा सकता है।

मूल्यांकन में समस्याएँ

1. **मानदंडों (निकर्षों) का चयन**

   किसी अन्य मूल्यांकन कार्यक्रम की भांति, उपबोधन का मूल्यांकन भी ऐसे निश्चित मानदंडों पर आधारित होता है जिनके आधार पर उपबोधन के परिणामों की जाँच की जाती है। अच्छा निकष वह है जो अध्ययन की जानेवाली समस्या से संबद्ध या संगत हो और साथ ही साथ जिसे मापा भी जा सके। विशेष स्थिति से संबद्ध मानदंड की प्राप्ति सरल हो सकती है लेकिन कई बार, ये अत्यंत अस्पष्ट और अव्यावहारिक होते हैं क्योंकि इन्हें संख्यात्मक रूप में निर्धारित करना अत्यंत कठिन हो जाता है। यदि हम व्यक्तिनिष्ठ मानदंड के चयन को प्रस्तावित करें अर्थात् उपबोधक की प्रभाविता की जाँच उपबोध्यों की व्यक्तिगत राय से करना चाहें तो शायद प्राप्त निष्कर्ष भी व्यक्तिनिष्ठ होंगे।

   प्रायः वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन को मूल्यांकन का सर्वश्रेष्ठ साधन माना जाता है। इसके अंतर्गत किसी तीसरे पक्ष या मनोवैज्ञानिक परीक्षण में प्राप्त अंकों के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है जो भविष्य सूचक होता है तथा सर्वोत्तम माना जाता है। लेकिन इसकी अपनी सीमाएँ भी हैं, जैसे हीनभावना की अनुभूति को यदि मानदंड माना जाए तो किसी भी बाहरी एजेंसी के द्वारा इसका प्रेक्षण या अवलोकन नहीं किया जा सकता। इसलिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग मात्र विकल्प के रूप में किया जा सकता है। परंतु वर्तमान समय में केवल कुछ गिने-चुने मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को ही वैध माना जाता है। वास्तव में, सभी स्थितियों और व्यक्तियों के लिए कोई भी परीक्षण वैद्य नहीं है।

2. **मूल्यांकन किए जाने वाले लक्ष्य की जटिलता**

   प्रायः उपबोधन का लक्ष्य आत्म-निदेशन और आत्म-निर्भरता की प्राप्ति करना होता है। ऐसे लक्ष्यों के संदर्भ में मूल्यांकन कार्य सरल प्रक्रिया नहीं हो सकती क्योंकि ये लक्ष्य अनूठे, जटिल और गतिशील होते हैं। यह विशेष रूप से व्यक्तिगत उपबोधन के मामले में होता है न कि शैक्षिक उपबोधन के मामले में, जहाँ लक्ष्य मुख्य रूप से विद्यालय में अधिक अंक प्राप्त करने, स्मृति कौशल और अध्ययन से जुड़ी आदतों आदि में सुधार लाने से संबद्ध होते हैं।

3. **पर्याप्त आंकड़ों का अभाव**

   इसका संदर्भ पूर्व उपबोधन स्थिति से सर्वश्रेष्ठ उपबोधन स्थिति की तुलना से है। यदि आंकड़ों का अभाव होगा तो सार्थक उपबोधन अव्यावहारिक रूप ले लेगा।

4. **मूल्यांकन**

   उपबोधन के संदर्भ में मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें काफी समय लगता है।

5. **प्रशिक्षित कार्मिकों का अभाव**

   मूल्यांकन की तकनीकों में निपुण प्रशिक्षित कार्मिकों का अभाव भी समस्याएँ उत्पन्न कर सकता है।

लेकिन ऐसा नहीं है कि समस्याओं और प्रायोगिक कठिनाइयों से जूझने के डर से हम उपबोधन कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना बंद कर देंगे। इसके बहुत से कारण हैं, पहला कारण है कि किसी भी कार्यक्रम का औचित्य और उपयोगिता का निर्णयन मूल्यांकन के बिना संभव नहीं है। दूसरे, इससे कार्यक्रम की सीमाओं का पता चलता है। अतः सीमाओं या त्रुटियों का पता लगने से उपचारी उपाय सुनिश्चित करना और प्रदान की जाने वाली सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार लाना संभव हो पाता है। अंत में उपबोध्य की दृष्टि से भी इसका महत्व है। क्योंकि इसके द्वारा उन्हें प्रतिपुष्टि प्रदान की जा सकती है ताकि वे श्रेष्ठ परिणामों के लिए अभिप्रेरित हो सकें।

इस प्रकार हमें इस क्षेत्र में मूल्यांकन की आवश्यकता और शोधकर्ताओं द्वारा अनुभूत समस्याओं का पता चल गया है। अब हम ऐसे तरीकों का अध्ययन करेंगे जिनके प्रयोग द्वारा मूल्यांकन प्रक्रिया को पूरा किया जाता है।

1. **सर्वेक्षण उपागम**

यह अत्यंत सरल विधि है। इसमें निश्चित उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए चयनित प्रतिदर्श पर किए गए सर्वेक्षणों से आँकड़े इकट्ठे किए जाते हैं। इस उपागम में शामिल हैं; समष्टि की पहचान करना, इससे प्रातिनिधिक प्रतिदर्श की प्राप्ति करना, जानकारी इकट्ठी करना, उपयुक्त मूल्यांकनपरक कार्यसूची का उपयोग करना और अंत में पूर्व-निर्धारित मानदंडों के आधार पर निकष की विस्तृत व्याख्या प्रदान करना।

इस उपागम के अंतर्गत उपबोध्यों से प्रत्यक्ष रूप से प्रश्न पूछे जाते हैं या प्रश्नावली के माध्यम से उपबोधन की उपयोगिता पर उनके विचार प्राप्त किए जाते हैं कि उन्हें उपबोधन से लाभ मिला है या नहीं। उनसे उपबोधन में पाए जाने वाले दोषों और संभावित समाधानों को उजागर करने के लिए भी कहा जाता है। उपबोधन में सुधार लाने के लिए भी उपबोध्यों से विविध प्रश्न पूछे जाते हैं।

यह विधि काफी उपयोगी उपागम है क्योंकि इसके अंतर्गत यथोचित समय में बड़ी संख्या में आंकड़े इकट्ठे किए जा सकते हैं जिससे निष्कर्ष अधिक वैध बनते हैं। इस उपागम के कुछ दोष भी हैं जैसे, प्रतिदर्श में सम्मिलित व्यक्तियों के उत्तरों की अविश्वसनीयता, उनमें अधिकांश रूप से सामाजिक रूप से वांछित उत्तर देने की प्रवृत्ति अधिक होती है, प्रयोगात्मक वैधीकरण का अभाव रहता है और प्रतिचयन त्रुटियों के होने की संभावना बढ़ जाती है जिससे निष्कर्ष अभिनत हो सकते हैं।

2. **व्यक्ति अध्ययन उपागम**

इस उपागम के अंतर्गत उपबोधकों का ध्यान व्यक्तिगत मामलों की ओर होता है। प्रत्येक मामले का विश्लेषण गहराई से किया जाता है जिससे उपबोधकों द्वारा दिए गए उपबोधन की प्रभाविता की पहचान हो सके। इसके पश्चात् व्यक्तिनिष्ठ मानदंडों का प्रयोग करते हुए दुबारा से मूल्यांकन किया जाता है जैसे उपबोध्यों का उपबोधन कार्यकम के प्रति क्या दृष्टिकोण है या अपनी बेहतरी को ध्यान में रखते हुए उपबोधन के प्रति उसके विचार कैसे हैं। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, वस्तुनिष्ठ मानदंडों का प्रयोग भी व्यक्ति की निजी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए किया जा सकता है। इस उपागम का मुख्य लाभ, व्यक्तिगत मामलों में दिए जाने वाले जोर में निहित है। इस उपागम का बड़ा दोष है कि इसमें समय बहुत लगता है। इसके अतिरिक्त हर व्यक्ति अपने आप में अनोखा है और ऐसे आंकड़ों पर ठोस राय कायम करना अनुपयुक्त होगा। लेकिन इसके विपरीत यदि हम अलग-अलग उपबोध्यों से संबद्ध आंकड़ों को अनदेखा करते हैं तो यह व्यक्तिगत उपागम के अनूठे लक्षणों को अनदेखा करना भी होगा।

3. **प्रयोगात्मक अध्ययन**

इस उपागम की बुनियादी अपेक्षाएँ हैं : (क) उद्देश्यों का निर्धारण या ऐसे लक्ष्य की स्थापना जिसे ध्यान में रखकर अध्ययन किया जाता है। (परिकल्पनाओं का निर्माण), (ख) प्रयोग

के लिए उपयुक्त विधि या रूपरेखा का चयन, (ग) दो या अधिक समतुल्य समूहों का चयन, (घ) उपबोधन तकनीकों का अनुप्रयोग जिससे परिणामों की निष्पक्ष जाँच हो सके और (च) आंकड़ों का विश्लेषण और निष्कर्षों की व्याख्या।

इस उपागम का प्रमुख सोपान, समतुल्य समूहों का चयन करना है। शैक्षिक क्षेत्र तथा उपबोधन में भी इस तरीके से अध्ययन कौशलों में सुधार, बोधगम्यता, स्मृति, वाचन योग्यता आदि से जुड़ी प्रगति का मूल्यांकन इस विधि द्वारा किया जा सकता है। लेकिन व्यवसाय चयन और कार्मिक उपबोधन से जुड़े क्षेत्रों में उपबोध्य को संतुष्ट करना जटिल प्रकार्य है क्योंकि इसके द्वारा वस्तुनिष्ठ निर्धारण काफी कठिन होता है।

उपबोधन की उपयोगिता

अब हम ऐसे निष्कर्षों को सूत्रबद्ध करेंगे, जिसकी प्राप्ति उपबोधन कार्यक्रमों के मूल्यांकन से हुई है।

अनुवर्ती अध्ययन दर्शाते हैं कि विद्यार्थियों को स्कूल में और बाद में दिया जाने वाला उपबोधन ऐसे समूहों की तुलना में अधिक सफल होता है जिन्हें उपबोधन की प्राप्ति कभी नहीं हुई। इन दोनों समूहों के बीच अभिप्रेरणा की असमानताओं को नियंत्रित करने के बावजूद भी, सफलता दर में महत्वपूर्ण असमानताएँ देखने को मिलती हैं।

सभी मामलों में उपबोधन समान रूप से प्रभावी नहीं होता। व्यावसायिक उपबोधन से व्यावसायिक संतुलन को बेहतर बनाया जा सकता है। अध्ययनों ने सिद्ध किया है कि उपबोधक को प्राप्त सैद्धांतिक शिक्षा की तुलना में उसका व्यावहारिक अनुभव अधिक महत्व रखता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) खंड के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

19. बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलतः

i) उपबोधन की प्रभाविता पर उपबोध्य की व्यक्तिगत राय, मूल्यांकन का वस्तुनिष्ठ मानदंड है।

ii) मनोवैज्ञानिक परीक्षण से प्राप्त अंक, मूल्यांकन का व्यक्तिनिष्ठ मानदंड है।

iii) उपबोधन का मूल्यांकन, उपबोध्यों के लिए भी सहायक होता है।

iv) सर्वेक्षण प्रणाली उपबोधन कार्यक्रम को मूल्यांकित करने का सर्वाधिक सरल तरीका है।

2.12 सारांश

विभिन्न लेखकों ने उपबोधन के विभिन्न पहलुओं पर जोर देते हुए, उपबोधन को परिभाषित किया है। लेकिन इनमें अधिकांश इस बात पर सहमत हैं कि उपबोधन एक प्रक्रिया है और इसके अंतर्गत व्यावसायिक रुप से प्रशिक्षित उपबोधक और सहायता की अपेक्षा करने वाले उपबोध्य के बीच संबंध स्थापित होता है। मनश्चिकित्सा, मार्गदर्शन, अनुदेश और सलाह देना आदि ऐसे कुछ क्षेत्र हैं जो उपबोधन से घनिष्ठ रुप से जुड़े हुए हैं। यद्यपि ये क्षेत्र उपबोधन से गहन रुप से संबद्ध हैं, फिर भी इनके कुछ कार्य उपबोधन से भिन्न हैं।

वैज्ञानिक तकनीक के रुप में उपबोधन कुछ व्यवस्थित सिद्धांतों और अवधारणाओं पर आधारित है। उपबोधन में पूर्वानुमानित है कि हर व्यक्ति अपने निजी निर्णय लेने में सक्षम है और उसे अपने

पक्ष का चयन करने का पूरा अधिकार है। उपबोधक, उपबोध्य को सलाह या समस्या-निवारण में सहायता नही प्रदान करता बल्कि यथोचित सोच और निर्णय लेने में मदद करता है।

यदि उपबोधन के लक्ष्यों को भली-भाँति समझा न जाए तो प्राप्त निष्कर्ष निरर्थक सिद्ध होते हैं जिससे निराशा होती है। उपबोधन के मुख्य लक्ष्य हैं : (1) सकारात्मक मनस्कता की प्राप्ति, (2) समस्या-निवारण, (3) निर्णय लेना, (4) व्यक्तिगत प्रभाविता को बेहतर बनाना, (5) सोच परिवर्तन में सहायक होना और (6) व्यवहार में बदलाव लाना।

उपबोधन के तीन प्रमुख उपागम हैं ; (1) निदेशात्मक, (2) अनिदेशात्मक और (3) समाकलनात्मक। किसी भी उपागम के प्रयोग के बावजूद उपबोधन सामान्यतः चार चरणों अर्थात् प्रारंभिक चरण, मध्यम चरण, अंतिम चरण और समाप्ति से होकर गुजरता है।

उपबोधन की प्रभाविता, बड़ी सीमा तक उपबोधक के व्यक्तित्व और अन्य विशेषताओं पर आधारित रहती है।

समूह उपबोधन की अवधारणा निरंतर लोकप्रियता प्राप्त कर रही है और इसका मुख्य कारण है कि यह कम खर्चीली है।

उपबोधन के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में विशेष विषय-विशेषज्ञता का होना आवश्यक है जैसे पारिवारिक उपबोधन, व्यावसायिक उपबोधन और नशा और मदिरापान करने वालों को दिया जाने वाला उपबोधन।

अन्य सेवाओं की भांति उपबोधन सेवाओं का मूल्यांकन भी अति आवश्यक है। मूल्यांकन से कार्यक्रम की प्रभाविता को परखने में सहायता मिलती है।

2.13 अभ्यास कार्य

1. अपने स्कूल में किसी ऐसे विद्यार्थी की पहचान कीजिए जिसे उपबोधन की आवश्यकता हो। किसी उपयुक्त उपबोधन उपागम का चयन कीजिए। ऐसी तकनीकों का वर्णन कीजिए जिनके प्रयोग से आप विद्यार्थी को सहायता प्रदान करेंगे। प्रयुक्त उपागम और तकनीकों का चयन करने के कारणों की विवेचना भी कीजिए।
2. चर्चा कीजिए कि व्यावसायिक क्षेत्र में प्रयुक्त उपबोधन का अर्थ, इसके सामान्य अर्थ से भिन्न है।
3. समूह उपबोधन के लाभ और सीमाओं का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए।